कीचक-वध

(महाकाव्य)

तन्त्रनाथझा

अनुपम
(साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थान)
दरभंगा

☐ प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान
अनुपम
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थान
लाल कोठी, राजकुमार गंज
दरभंगा - 846004
(बिहार)

☐ तृतीय संस्करण- 2006 ई०

☐ मूल्य- 60.00

☐ मुद्रक-
प्रिंटवेल
टावर, दरभंगा - 846004

निवेदन

आधुनिक मैथिली साहित्यक विकासमे आचार्य रमानाथ झा आ प्रो० तन्त्रनाथ झाक योगदान स्वर्णाक्षरमे अंकित कएल जाए सकैत अछि । ज्ञातव्य अछि जे म०म०डा० सर गंगानाथ झाक संपादनमे प्रकाशित 'Indian Thoughts' नामक शोध-पत्रिकाक विशिष्ट महत्त्व रहल अछि । आचार्य रमानाथ झा 'Indina Thoughts' पत्रिकासँ अभिभूत रहथि । सन् 1346 सालक आश्विनमे आचार्य रमानाथ झाक संपादनमे *साहित्य पत्र*क प्रथम अंक प्रकाशित भेल । एहि *साहित्य पत्र*मे 'कीचक-वध'क प्रकाशन आरंभ भेल रहैक । इतिहासकार डॉ० दुर्गानाथ झा 'श्रीश' लिखैत छथि– ''*साहित्य-पत्र*क प्रथम अंकमे 'कीचकवध'क आरम्भिक किछु अंश प्रकाशित होइतहिँ ओ मैथिलीक विशिष्ट ओ प्रतिष्ठित कविक अग्रिम पंक्तिमे स्थापित भए गेलाह । कविक उदय होइत एना तँ सुनल छल, परन्तु एकहि वेर अनायास सम्पूर्ण प्रतिभासित गौरवक संग महाकविक उदय कोनहु भाषा-साहित्यक इतिहासमे विरल अछि । कुमारगंगानन्दसिहक 'अगिलही' जकाँ 'कीचक-वध' पूर्ण नहि भए सकल ता' 'साहित्य-पत्र'क प्रकाशन बन्द भए गेल । तथापि, अपूर्ण 'कीचक-वध' दीर्घ काल धरि चर्चाक विषय बनल रहल । यात्रीजी तँ 'कीचक-वध'क असमाप्तिकेँ 'साहित्यिक दुर्घटना'क संज्ञा देल एवं एही प्रकारेँ साहित्य-रसिकलोकनिक वारंवार उपरागक पश्चात् कतोक वर्ष बितला पर श्रीतन्त्रनाथबाबू 'कीचक-वध'केँ सम्पूर्ण कए देल । गत वर्ष (1976) एहिमे आओर सर्ग जोड़िकेँ तँ एकरा आओर अधिक सर्वगुणसम्पन्न बनाए देल अछि । एहि बीच मैथिलीमे अनेक महाकाव्यक रचना ओ तकर प्रकाशन भेल अछि, परन्तु 'कीचक-वध' जाहि स्थान पर स्थापित भेल छल, तकर अतिक्रमण सम्भव नहि भए सकलैक अछि । एकसर 'कीचक-वध' हुनक अमरत्वक हेतु पर्याप्त कहल जाए सकैत अछि ।''

प्रातः स्मरणीय श्रीतन्त्रनाथझाक जन्म भेल धर्मपुर, उजान (दरभंगा) गाममे शाके 1831क द्वितीया-श्रावण-शुक्ल-षष्ठी-रवि (संक्रान्तिक अनुसार भादव सिंहक 6/3/00 अंश बितला सन्ताँ) तदनुसार 22 अगस्त, 1909 ई०कँ । ज्ञातव्य जे प्रातः स्मरणीय तंत्रनाथ

झाक निधन काशी विश्वनाथक शरणमे वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) तदनुसार 2 मइ, 1984कें भेल रहनि । 'कृष्ण चरित' कविक दोसर प्रबन्ध काव्य थीक । 'कृष्ण-चरित' प्रबन्ध काव्य पर कविकें साहित्य-अकादमी पुरस्कारसँ सम्मानित कएल गेल रहनि । हिनक 'नमस्या' एक महत्त्वपूर्ण कृति अछि । परन्तु 'नमस्या'क गंभीर चर्चा एखन धरि नहि भए सकल अछि । 'एकांकी चयनिका' आ 'मंगल पंचाशिका' आदि हिनक अमर कृति थीक । गद्य रचनाक क्षेत्रमे हिनक योगदान अविस्मरणीय अछि । वस्तुत: तन्त्रनाथ बाबू मैथिलीक बड़का उन्नायक आ विशिष्ट साहित्यकारक रूपमे अविस्मरणीय छथि ।

2001 । दरभंगासँ मैथिलीक चर्चित साहित्यकार विश्वनाथक संपादनमे **रचना**(त्रैमासिक मैथिली पत्रिका)क पुन: प्रकाशन आरम्भ भेल । **रचना** निर्भीक एवं निष्पक्ष पत्रिका अछि । दरभंगामे साहित्यिक वातावरणक निर्माण भेल अछि । हम मिथिला आ मैथिलीसँ सदैव जुड़ल रहलहुँ । परन्तु अवकाश प्राप्तिक बाद मिथिला आ मैथिलीक लेल हम अपन संपूर्ण शक्ति आ ऊर्जाकें समर्पित करबाक निर्णय लेल अछि ।

संघ लोक सेवा आयोगक पाठ्यक्रममे 'कीचक-वध'कें सम्मिलित कएल गेल । फलत: 'कीचक वध'क पुन: प्रकाशन अपेक्षित भए गेल । हमर ई पुनीत कर्त्तव्य छल । हम अपन कर्त्तव्यकें पूरा कएल तकर संतोष अछि ।

महालया, 2006 **उग्रनाथ झा**

भूमिका

प्रो० श्री तन्त्रनाथ झाक रचित 'कीचक-वध' मिथिला भाषामे अमित्राक्षर छन्दमे काव्य-रचनाक प्रथम प्रयास थीक। महाभारतक विराट पर्वमे वर्णित पाण्डव लोकनिक वनवासोत्तर विराट राजक आश्रयमे अज्ञातवासक समयक वृत्तान्त पर एकर कथावस्तु आधारित अछि। कीचक विराट राजक सेनापति तथा महारानीक सोदर छल। ओ पाण्डव-पत्नी महिला-रत्न द्रौपदी पर आसक्त भए हुनका प्रति घृणास्पद दुर्व्यापारमे प्रवृत्त भेल। एहन कथावस्तु लए काव्य रचनामे कविकेँ अपन सर्जनात्मक कल्पनाशक्तिक उपयोगक यथेच्छ अवसर भेटलैन्हि अछि।

समस्त कीचक वध पढ़ि हम देखल जे कवि एहि काव्य रचनामे पूर्ण सफल भेल छथि। विशेषतया वर्णन विस्तारक हेतु सूक्ष्म दृष्टि तथा प्राञ्जल वचो-विन्याससँ हुनक कविकर्म मनोहर भए गेल छैन्हि।

हर्षक विषय थीक जे कीचक-वधक नवीन संस्करण भए रहल अछि जाहि मे हमरा कहलासँ कवि एक सर्ग बढ़ाए देल अछि।

हमरा जनैत कीचक-वध मैथिली-साहित्य-भाण्डारक हेतु प्रकृष्ट उपचय थीक।

दड़िभङ्गा
24-12-76

श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय

विज्ञप्ति

प्रस्तुत पुस्तकक प्रारम्भ ओ समाप्ति मध्य पचीस वर्षसँ अधिकक व्यवधान । प्रारम्भ कएल नवीन प्रयोग रूपेँ सर्वथा स्वान्तः सुखाय । साहित्य-पत्रक सङ्ग एकर क्रमिक प्रकाशन प्रारम्भ भेल । साहित्य-पत्र बन्द भए गेला सन्ता बड़ मनोहानि भेल । रचनौक गति अवरुद्ध भए गेल ।

प्रारम्भहिसँ बन्धुवर्गक प्रोत्साहन एकरा समाप्तिक भार स्वरूप भए गेल । श्री यात्रीजी औदार्य्येँ एकर असमाप्तिकेँ दुर्घटना कहल । जेना तेना समाप्त कएल, अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः ।

जे महानुभाव लोकनि एकर बहुधा अतिरञ्जित प्रशंसो कए प्रोत्साहित कएल तनिका प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करब हमर परम कर्त्तव्य मुदा कतेकक नामोल्लेख करू । साहित्य-पत्र-परिवारक तँ ई वस्तुए थीक । श्रद्धेय श्री रमानाथ बाबू तथा बन्धुवर दीनानाथ बाबूकेँ ई देखि कतेक स्मृति जाग्रत होएतैन्हि । स्वनामधन्य अमरनाथ बाबूक परोक्षे भए गेलैन्हि । जे बटुक छलाह से एहि व्यवधान मध्य लब्धप्रतिष्ठ भए गेलाह ।

अषाढ़ वदि अष्टमी
मङ्गल, सन् 1370 साल ।

त्रुटिक हेतु क्षमायाचना करैत,
श्री तन्त्रनाथ झा

पुनश्च

गत 1370 सालमे कीचक-बध समस्त प्रकाशित भेल । दड़िभङ्गाक मूर्द्धन्य साहित्यकार श्रद्धेय श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय पढ़ि प्रसन्न भए कहल जे एकर सातम ओ आठम सर्गक बीचमे एक सर्गक सन्निवेश अपेक्षित अछि । एहि बेर जखन नवीन संस्करणक अवसर उपस्थित भेल तखन हुनक परामर्शानुसार एक सर्ग सद्यः रचना कए जोड़ि देलिऐक, सातम सर्गक आगाँ आठम सर्ग । पहिलुक आठम सर्ग नवम ओ नवम दशम सर्ग भए गेलैक अछि ।

कीचक-वधक रचना चारि दशक पूर्व नवीन प्रयोग रूपेँ प्रारम्भ कएल । भिन्न-भिन्न अंशक रचना कालान्तरेँ करैत प्रस्तुत संस्करणक एक सर्गक रचना सम्पन्न मात्र कएल अछि । एहिसँ आगाँ नीर-क्षीर विवेकी सुधीवृन्द जानथि ।

एतबहु दिन पर एकर नव संस्करण अपेक्षित भेल तदर्थ पाठक वृन्दक प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करैत,

दड़िभङ्गा,
माघ कृष्ण 5 सोम,
1384 साल

श्री तन्त्रनाथ झा

प्रथम सर्ग

वागीश्वरि ! भए सदय करिअ दृगपात,
करुणाकरि ! करुणा करु, करु निज दास
दीन हीन-मति कातर-हृदय सनाथ ।
करिअ कृपालव दान जाहि कए प्राप्त
मूढ़ होअए मतिमान, हमर हिअ मूक
ऊसर, पाबओ दया–सलिल–अभिषेक,
उपजओ नव नव भाव प्रफुल्ल सुगन्ध,
पङ्गु–कल्पना पाबओ पद–सञ्चार,
तुअ पद–सेवा–निरत रहओ सभ काल,
तुअ गुण-गानहिँ वाणी होअओ धन्य ।
जय जय मैथिलि, तुअ पद-सेवक तुच्छ
कएल मनोरथ उच्च, रचब उपहार
अभिनव रीतिहिँ, पूजब चरण पुनीत,
किन्तु हृदय भयभीत, होएत उपहास,
प्रांशु-लभ्य-फल-लुब्ध होअए उद्बाहु
वामन जनि, अछि किन्तु तोर पद आस,
होइछ जननि सुतक अधबोलिअहुँ तुष्ट ।
वन्दिअ द्वैपायन-पद जनि पद-पङ्क्ति
अनुसरि कत जन पहुँचल सुयशक धाम
कविता–रसक सरोवर तनिक पवित्र,
परिमलमय उत्फुल्ल जलज जहिठाम,
जे लए गाँथल कत जन हार अमोल,
कएल भारती-भूषण, जनि आमोद
भए विभोर जन बिसरए भुवनक आधि ।
होएत कओन परि मोर गति ततए सशङ्क

काँपए दीन हृदय मोर, सूझए न बाट,
शिथिल पड़ल पद, प्रभुपद टेकल माथ,
दास निराश अकिञ्चन दयाभिखारि ।

नृपति युधिष्ठिर जनिक प्रचण्ड प्रताप
विश्व–विदित, जे कएल सविधि सम्पन्न
राजसूय-मख कए दिग्विजय समस्त,
अति समृद्ध छल जनिक विपुल साम्राज्य
अपर अमरपुर सम शोभित महि बीच,
क्षात्र–धर्म–पालन-रत द्यूतिहिँ हारि
राज्य समस्त, अनुज-पत्नी लए सङ्ग
कएल वनहिँ प्रस्थान, अवधि पर्य्यन्त
वनहिँ वास कए, बारह वर्ष बिताए
आश्रय धएल विराट-राजपुर बीच,
द्यूतकार बनि मत्स्येशक ओहिठाम
कङ्क स्वनाम धराए रहथि अज्ञात ।
शतशत नृपमणि-मुकुट जनिक पदपीठ
पड़ए, आज छथि परकेरि अनुचर भेल
निज गौरव-मय परिचय कए प्रच्छन्न
मध्यम–पाण्डव जनिक प्रबल भुजदण्ड
शत्रुपक्ष-विध्वंस–दक्ष, अछि आज
मत्स्याधिपक सूप–विन्यासहिँ खिन्न,
जनि मृगराज जनिक गर्जनसँ त्रस्त
मत्त गजेन्द्र-यूथ वन-बीच पड़ाए
पिञ्जर-बद्ध सहए शशहुक उपहास,
भीम महाबल बल्लव नाम धराए
रचथि पाक मत्स्येशक रुचि–अनुकूल ।

अर्जुन, जनिक शौर्य्यसँ भए अति हृष्ट
त्र्यम्बक कएल पाशुपतकेरि उपहार,
आज विराटक दुहितहिँ सिखबथि नृत्य ।
जाहि भाल पर राजए शुभ्र किरीट,
वेणी ततए विशाल भुजङ्गिनि–काय ।

जे पुरुषत्वक जाथि गनल अवतार,
छथि परिचर, भय, धए वनितोचित वेष ।
मदनोपम सौन्दर्य्य जनिक प्रख्यात
ग्रन्थिक नाम धराए नकुल छथि आज
अश्व–सूत मत्स्येशक, छथि सहदेव
गोष्ठपाल भए तनिकर ताही ठाम
तन्तिपाल निज संज्ञा कए विख्यात ।।
वासवसम बल–बुद्धि–विवेक–विशिष्ट
पाँचओ जन त्रिभुवन शासन–उपयुक्त
इतर विराटक सेवातत्पर आज,
जनि भस्मावृत पावक बूझ न लोक,
लोक–भस्मकर शक्ति ततए अछि छन्न,
पाँच महाबल रहथि ततए अज्ञात ।

पत्नी पञ्च–पाण्डवक, द्रुपद–सुपुत्रि,
पति–प्राणा, कुलवधू कुरुक, सुकुमारि
रति–लज्जाकर जनिकर अनुपम रूप,
पति–अज्ञात–वाससँ छथि असहाय,
जनि सुन्दर–सुविशाल–रसाल–सनाथ–
मालति, कुसुम–भार–नत, जकर सुगन्धि
लए लए पवन करए जनमन आनन्द,
नियति–क्रमहिँ पाबए दुस्सह आघात
झञ्झानिलक, होअए आश्रय–द्रुम नष्ट,
शतशत मधुकर जत लुबुधल मधु–लोभ
निस्सहाय भए सहि पशुपदक प्रहार,
कण्टकमय तृण सङ्कुल भूमि लोटाए ।
एहि विधि कृष्णा हतभागा सुकुमारि
मत्स्येशक अन्तःपुर कएल प्रवेश

छलि बैसलि विराट–महिषी ओहिठाम
हेमविनिर्मित आसन पर सुकुमारि,
नीलाम्वर–परिवेष्टित गौर शरीर
तडिल्लता जनि, शतशत–युवति–समूह

सेवा-तत्पर, कत जनि रच ताम्बूल,
कत जनि गाँथए ललित मल्लिका-माल,
केओ घस चन्दन-अगुरु-सुगन्ध-प्रलेप
कत जनि भोजन-पानक कर विन्यास,
दुइ जनि किसलए-तनु सुन्दरि तत ठाढि
धए कर चामर मन्द-मन्द कर बात,
कम्पित तनिक पीन उन्नत वक्षोज
मलय-प्रकम्पित कनक-कमल सम सोभ
एक जनि रमणि समीपहिँ वीणा-दण्ड
लए कर करइत छलि श्रुति-सुखद निनाद,
तनि जघन-स्थित उरज-युगल-संलग्न
परसि कपोल, पाबि सुखमय सञ्चार
चम्पक-मुकुल-तुल्य अङ्गुलिक सयत्न
नीरस-तनु निर्जीव विपञ्ची-दण्ड
जनि भए सञ्जीवित, सुखवारिधि-मग्न
करइछ भुवन-मनोहर रसमय गान ।
राजित ततए सुदेष्णा जनि महि-बीच
धए मानुष-तन शची लेल अवतार,
अमरपुरी तजि आएल जनि हुनि सङ्ग
सकल विलास, समस्त रूप-ऐश्वर्य्य ।
दीना द्रुपदराज-तनया कर जोडि,
ताहि निवेदल "देवि, अभागलि नारि
सैरन्ध्री हम, हमर पञ्च-गन्धर्व-
पति छथि, कारणवश सम्प्रति निज सङ्ग
राखि सकथि नहि नियत अवधि-पर्य्यन्त ।
दूर देशसँ सुनि तुअ सद्गुण-गान
आश्रय-आशहिँ आइलि छी एहि ठाम ।
हमर केश-विन्यास-कार्य उत्कृष्ट,
गाँथए जानी चित्र मनोहर माल्य
पाण्डव-कुलमे छलहुँ द्रौपदी सङ्ग,
हमरअभाग्यहिँ राज्य हुनक भेल नष्ट ।
कृपया एकवर्ष सेवा स्वीकार
कएल जाए, पुनि हम जाएब पति-धाम ।"

हुनक रूप–माधुर्य्य–वचन–वैशिष्ट्य
मानव–दुर्लभ प्रतिभासँ भए मुग्ध
रहलि सुदेष्णा किछु छन भए संक्षुब्ध
जनि प्रकृष्ट मणिद्युतिसँ होअए लोक ।
पुनि कहलन्हि– ''सुन्दरि तुअ तन सुकुमार
की अनुचरि–उपयुक्त ? तोहर मुखकान्ति
देवहुँ दुर्लभ । सम्प्रति तुअ परिधान
यदि च मलिन, भूषण बिनु तोहर गात,
फुजल केश सम्भार, क्षाम तुअ देह,
किन्तु जाहि विधि निरमाओल कमनीय
कखनहु तेजए न सहज मनोहर–धर्म ।
ककर न नयन चोराओत तुअ मुखकञ्ज !
कोन परि सकब निबाहि गरुअ तुअ भार ।
पुरुष–विहीन–रूपसी–यौवन कम्र
रिक्त–राज्य–सिंहासन नृपति–विहीन,
की न अनर्थ कराबए, के नहि जान !''

सुनि मनस्विनी कृष्णा कहल सगर्व,
''यद्यपि सम्प्रति पति–सहवास–विहीन
हमर दशा दयनीय भिक्षुकी-तुल्य,
किन्तु ककर अछि दर्प एहन, कल्याणि,
करत कुदृष्टिपात अबला अवधारि ।
तेजिअ एहन भय देवि, पञ्चपति मोर
रहथि निरीक्षण-तत्पर सतत सतर्क ।
जे नर करत पाप-मति मोहि अवलोकि
पड़ि मम पति–क्रोधानल शलभ समान
होएत तत्क्षण भस्म, ओकर नहि त्राण
सम्भव यद्यपि रहथु सुरेश सहाय ।''
सुनि पाञ्चाली-वचन गर्व-संयुक्त
कहल सुदेष्णा, ''यदि रुचिकर तोहि एहि,
रहिअ एतए सुन्दरि, अभिमत अनुकूल,
हमर सखी भए ससुख ।' द्रौपदी फेरि
कहल जोड़ि युगपाणि-पद्म, – ''पुनि देवि,

दुइ गोट काज सतत हमरा क्षन्तव्य,
नहि हमरा उच्छिष्ट कतहु हो ग्राह्य,
करब न पद-संवाहन, यदि पतिदेव
पओता हमर चरित्र दुष्ट, ध्रुव प्राण
हरता तहिखन ।'' रानी कए स्वीकार
लेल निकट बैसाए । रहलि ओहिठाम
कुरु-कुलवधू द्रुपद-पुत्री सुकुमारि
कृष्णा, जनि पति-निर्वासित वन-बीच
रघुकुलवधू मैथिली भए असहाय ।
जनिकर कृपा-कटाक्ष-लोभवश सङ्ग
दासी-वृन्द मानु जीवन निज धन्य,
सतत यत्नपर सएह अभागलि आज
मुख हेरइत अनुखन रहइत छथि ठाढ़ि,
कोनपरि पाएब स्वामिनि-चित्त प्रसन्न ।
एहि विधि पाँचओ पाण्डव कृष्णा-सङ्ग
आश्रय पाबि विराट-राज-पुर-बीच
राहुग्रस्त सविता जनि नष्ट-प्रभाव
कटइत काल कोनहु विधि अवधिक आस
ततए बिताओल कतोक मास निर्विघ्न ।



द्वितीय सर्ग

चलिअ कल्पने, सत्वर देखिअ जाए
मत्स्यराज-अन्त:पुर, जत कर वास
कुरुकुलवधू द्रुपद-तनया सुकुमारि
नृप-महिषी-अनुचरि भए। सखिगण सङ्ग,
दासी-वृन्द-सुसेवित, केकय-पुत्रि,
अन्त:पुर-उद्यानहिँ आज विहार
छथि करइत, अछि सुखमय समय वसन्त।
लता-गुल्म-तरु सकल सुसज्जित आज
नव किसलय-दल, नव प्रसून अभिराम,
किंशुक, चम्पक, वकहुल, बकुल, नेबारि,
पाटलि, पटलि, मल्लिका, माधवि मञ्जु,
जनि अवनी ऋतुराजक स्वागत-जन्य
नूतन वसन-विभूषण पूरल अङ्ग।
कोकिल अग्रदूत ऋतुराजक बैसि
मधुमय कुसुम-पूर सहकारक डारि
करइछ समुद तनिक शुभ स्वागत-गान।
करइछ कल-गुञ्जन अलिवृन्द असंख्य
कुसुम-रेणु बह शीतल मलय-समीर।
जीतए त्रिभुवन कएल मदन अभियान
प्रबल सुसज्जित ऋतुपति सेना सङ्ग।
कत विधि कौतुक करथि सखीगण सङ्ग
ततए सुदेष्णा, किन्तु समीपहिँ ठाढ़ि
कृष्णा सुन्दरि, जनि सरसिज सर-बीच
चपल-हास-परिहास-जलहिँ निर्लिप्त,
ग्रसल भाग्य-रवि तनिकर दुर्दिन-राहु,
अस्फुट तेँ मुख-सरसीरुह। धए हाथ
पूछल ताहि सुदेष्णा, ''किअ सखि तोर
अछि मन एहन उदास, कओन दुख तोहि

पड़ल, करह नहि रङ्ग-रभस मिलि सङ्ग,
सरस समय सुखमय अछि एहन वसन्त।''
छाड़ि दीर्घ-निश्वास, जोड़ि युगपाणि
कृष्णा कहल, ''देवि, अनुचरि हम दीन,
तुअ सेवातिरिक्त नहि जानिअ आन,
तुअ अनुशासन पाबि करिअ सभ काज,
किन्तु मनक उल्लास, देवि, हतभाग्य
पाएब कतए ? देखु अछि एतहि कदम्ब,
पाबि जलद-ऋतु तरु छल केहन प्रफुल्ल,
कन्दुक-कुसुम पीत-सित-केसर-युक्त
हरित पत्रचय, श्याम मधुप मधुलुब्ध
करए अनुक्षण चउदिसि मधुर निनाद,
जनि समृद्ध जन विविध विभव-सम्पन्न
सेवए लोभहिँ लोलुप लोक - समूह।
शेफाली छलि शरदहिँ भेलि प्रफुल्ल,
नभ छल मेघ-विमुक्त शीत शशि-विम्ब
परस पाबि मञ्जुल तरु भरल प्रसून,
जनि प्रवाल चहुदिसि हीरक कण सोभ;
पवन-विचुम्बित कएल कुसुम कत दान,
कत जन चित्त सुवासहिँ कएल विमुग्ध,
पलटल समय, कहिअ धनि सुखमय आज,
किन्तु नीप-शेफाली आज उदास !
पुनि पुनि पवन कएल आलिङ्गन दान
नहि पुनि विटप प्रफुल्ल, पिकक कल गान
हो निष्फल जनि वधिर निकट सङ्गीत।
अलिदल चपल जाए सेबल सहकार।
कहिअ देवि, किंशुक-सहकारक सङ्ग
कोनपरि होएत कदम्ब आज आनन्द !
प्रबल-विराट-राज-महिषी, तुअ सङ्ग
कोन परि हमहु अभागलि दीना नारि
पाओब तुअ अनुरूप मनक उल्लास,
रहओ वसन्त, रहओ निष्ठुर हेमन्त।
तुअ सेवाव्रत-वती स्वजीवन धन्य
मानव यदि पाएब तुअ चित्त प्रसन्न।''

साश्र-नयन पुलकित-तनु गद्‌गद-कण्ठ
कृष्णा कहल कथा ई । साग्रह हाथ
पकड़ि सुदेष्णा, करइत बहु अनुरोध,
सङ्गहिँ लेल हिन्दोलहिँ त्वरित चढ़ाए ।
हेम-रचित मणि-खचित चित्र हिन्दोल
पट्टरश्मिसँ लागल आमक डारि,
चढ़ि लागलि झूलए लघु आस लगाए ।
एहि अवसर नृप-महिषी-सोदर भाए
कीचक नृप-सेनापति पहुँचल आबि
अन्तःपुर उद्यानहिँ, जनि मृगराज
भ्रमए अरण्य-बीच निर्भय निश्शङ्क,
चहुदिशि हेरइत अपन वध्य-आहार ।
अति विशाल वपु, श्याम-मेघ-सम कान्ति,
उन्नत दीर्घ ललाटहिँ शोभित ठोप
रक्तचन्दनक, आयत लोचन लाल
आसव-पानहिँ, चरणक गति अति मन्द,
जनि कुञ्जर मदमत्त झूमि वन बीच
चलए, बाहु उच्छून दीर्घ बलपूर्ण
स्वर्ण-वलय, नव-रत्न-जटित केयूर,
कुण्डल-दुलित श्रवण, मुक्ता-स्रज कण्ठ,
शोभित पुनु नव-मल्लिकाक वनमाल,
सुगठित पुष्ट बलिष्ट विशाल शरीर,
जनि यौवन साकार करए उपभोग
सकल भोग्य महिमण्डल उतरल आबि ।
देखि ततए उपभोग-शील अलिवृन्द
फुल्ल-कुसुम-मकरन्द लुब्ध, सुख-मग्न
करइत कल-गुञ्जन सुनि, सुनि पिकगान,
मदन-भुवन-जय-दुन्दुभि-नाद-समान
शीतल मलय-पवन-सुख परस-प्रमत्त
चउदिसि हेरल कीचक,

दूरहिँ देखि
क्रीड़ानिरत युवतिगण, भए स्वच्छन्द
चलल ताहि दिशि वेगहिँ सस्पृह-चित्त,

जनि क्षुधार्त्त शार्दूल देखि मृगयूथ
चरइत ससुख अरण्य-बीच निश्शङ्क,
जाए ताहि दिशि द्रुत-पद चञ्चल-चित्त ।
जाए समीप विलोकल भए प्रच्छन्न
लता-कुञ्ज बिच, चउँकल कीचक देखि
निज-भगिनी लए सङ्ग सखी-समुदाय
करइत हास-विलास-विविध । कमनीय-
बपु छलि रमणि सकल, छलि शोभित
किन्तु कृष्णा ततए, यथा तारागण बीच
इन्दु-कला, झुलइत नृप-महिषी सङ्ग
हिन्दोलहिँ अनुपम सुन्दरि सुकुमारि ।
देखि ताहि मदनक सर्वस्व समान
कीचक भेल चकित अति, निश्चल ठाढ़
करइत तनिकर रूप-माधुरी पान
अपलक नयनहिँ, मन्त्रमुग्ध जनि भेल
भावए लागल, 'के मम भगिनी- सङ्ग
अनुपम ई सुन्दरि, एहन शुचि रूप,
एहन मनोहर नहि छल देखल आन ।
कनक-यष्टि-सम दूबर गोर शरीर,
पीतांशुक फहराए, यथा जग जीति
विजयकेतु फहराबथि देव-अनङ्ग ।
पृष्टहिँ दुलित चरण-चुम्बी धम्मिल्ल
जनि तृषार्त फणिगण सुधांशु-मुख पेखि
पीबए चाह अमिअ-रस कए आयास ।
अञ्चल-हीन कञ्चुकी-बद्ध उरोज
लखि मन विवश भेल मनमथवश मोर ।
लोचन लोल विशाल श्रमित अरुणाभ,
बङ्क-विलोकन बेधए हृदयहिँ तीर ।
कत अछि देखल सुन्दरि रमणी-रत्न
कत सुख अछि उपभोगल, किन्तु न एक
एहन मनोहर, एहन सहज-सौन्दर्य्य,
देबहु दुर्लभ, कोन परि पाएब एहि ।
अधर-विम्ब दाड़िम-रद लखि मन-कीर
आतुर लोभ-विवश, चाहए उड़ि जाए

चाखिअ त्वरित ! व्यर्थ मम सभ ऐश्वर्य्य
व्यर्थ बाहुबल, मानव-जीवन व्यर्थ,
यदि नहि एहि रमणी रत्नहिँ भरि अङ्क
अधर-सुधारस पान कएल भरि पोष ।''
एहि विधि पाबि अनङ्गक कुटिल प्रहार
छल कीचक विह्वल तावत सखि सङ्ग
क्रीड़ा-विरत सुदेष्णा राज-निकेत
चलिल यथा प्रत्यूषहिँ उडुगण सङ्ग
इन्दुकला चल गगन-पयोनिधि-पार
द्रुपद-राज-तनया भए अन्यमनस्क
देखइत अपन विगत-ऐश्वर्य्यक चित्र
अङ्कित मानस-पट पर, एकसरि, मन्द,
पछुआइलि छलि जाइत, कीचक आबि
सम्मुख भए भेल ठाढ़, विजन-पथ बीच
पथिकक होअए यथा पाटच्चर लुब्ध ।
टोकल पुनि मृदु-कण्ठहिँ

''सुन्दरि ! आज
पाओल जीवन धन्य निरखि तुअ रूप ।
के तोँ ? कोन विधि आइलि छह एहि ठाम ?
त्रिदशपुरी-वरनारि--तुल्य शुचि-रूप,
तरुण वयस तुअ, पुनि तुअ अनुचरि-वेष
सालए शल्य विषमतम मम हिअ बीच ।
भामिनि, तुअ अति रुचिर-रूप-रस-लुब्ध
मम मन तृषित मनोज-ताप-सन्तप्त ।
तुअ अनुरूप रूप-वय तुअ वश आज
कीचक, नृप-सेनापति, विदित-प्रताप,
नृप-महिषी सोदर हम । तजि सङ्कोच
करिअ प्रेम स्वीकार, करिअ उपभोग
जीवन-सुख । विशाल प्रासादहिँ वास,
सेवा-निरत रहत तुअ अनुचर-वृन्द,
सतत प्रेम-भिक्षुक कीचक तुअ पास
रहत, पुराओत तोहर सकल मनकाम ।
रहइछ मम भयभीत समस्त विराट,
ककर दर्प तोहर इच्छा-प्रतिकूल

करत केओ किछु सुन्दरि, पुरिअ आस
करिअ सफल मम जीवन, करिअ विलास
सुमुखि, यथेच्छ तरुण वयसक उपयुक्त,
तजि दु:खद गर्हित ई अनुचरि-वृत्ति ।
आतुर अछि मम प्राण विकल तुअ लागि !
होइअ सदय सुहासिनि, तोर अधीन
अछि मम जीवन ।''

सुनि हालाहल-तुल्य
कीचक-वचन द्रुपद-तनया सुकुमारि
क्रोध-क्षोभवश किछु छन जनु हत-चेत
भेलि प्रकम्पित तनु, सुवदन उद्दीप्त
तप्त-कनक-सम, लोचन कञ्ज-समान,
स्फुरित अधर, जनि पाबि पदक आघात
नागवधू हो क्रोधावेश-विमूढ़ ।
पुनि झट सम्हरि, चेत कए, भए गम्भीर
ज्वालामुखी समान, दाबि क्रोधाग्नि
हिअ-बिच, कहल कीचकहिँ
''केहन ज्ञान,
केहन तुअ विवेक सेनापति आज ?
परदारा, भगिनी-अनुचरि, असहाय,
अबला सैरन्ध्री प्रति तुअ कामार्त्त,
ई मति घृणित पापमय कुत्सित नीच ।
व्यर्थ प्रतारण सकल, न एहन-वृत्ति
हमर, छाड़ पथ यदि जीवन प्रिय तोर ।
रक्षक छथि पति हमर पञ्च-गन्धर्व,
यदि पुनि करब पाप मति एहन नीच
नहि बाँचत तुअ प्राण, न सम्भव त्राण,
यद्यपि स्वयं सुराधिप होथु सहाय ।

ई कहि शम्पा-वेगहिँ झट अगुआए
चललि द्रुपद-तनया, कीचक तत ठाढ़
रहल हतप्रभ अङ्कित-चित्र-समान ।''



तृतीय सर्ग

दिनकर जनिक प्रताप प्रखर-तर भेल
जग-तम-नाशक, जनिकर कर-सुख-स्पर्श
कएल प्रफुल्ल कमल-वन, जनि भय-त्रस्त
कोटर-गत उलूक-वादुर-समुदाय,
भए आसीन उच्चतम उन्नति-शैल
हेरल पश्चिम गगनहिँ । ततए विलोकि
सन्ध्या अनुपम सुन्दर एकसरि ठाढ़ि
स्मर-शर-व्यथित न गुनल एक भल-मन्द,
भए ऐश्वर्य्य मत्त बल-दर्प-विमूढ़,
भेल अग्रसर बलसँ आनए ताहि ।
देखल जखन ताहि सन्ध्या-सुकुमारि
प्रस्तुत ततए पापमति अति उद्दण्ड
कर बढ़ाए उद्यत आलिङ्गन हेतु,
भेलि परम संक्रुद्ध, छनहिँ तन-कान्ति
भेल राग-रञ्जित प्रतप्त-कनकाभ ।
निष्प्रभ भेल दिवाकर गत-मर्य्याद
विगत सकल ऐश्वर्य्य, सकल बल-दर्प,
पश्चिम गगन-जलधि-बिच डूबल जाए ।

बढ़ल तिमिर जनि भूपति पापासक्त
पाबि, बढ़ए देशहिँ अनीति दुरबार ।
चकमक तारक-गणहिँ भेल नभ पूर्ण
जनि अरि-दमन नृपति भए क्षीण-प्रभाव
विजित शत्रुगणसँ सह कत उपहास ।

सकुचल कमल मलान जानि कमलेश
नष्ट-प्रभाव पतित । कुमुदिनि-मुख हास
भरल, यथा पिअ-शत्रुक दुर्गति देखि
सुमुखि-वदन विकसए आनन्द विभोर !

एहि अवसर अवनत-मुख अन्यमनस्क
लघु-लघु चलइत कीचक कएल प्रवेश
अन्तःपुर, निज-भगिनी सम्मुख जाए
बैसल भूमिहिँ, दए मस्तक निज हाथ ।
पूछल चकित सुदेष्णा,

''किअ तुअ आज,
मन अछि एहन उदास, अनुज दुख कोन
पड़ल तोहि ? की कएल नृपति अपमान ?
की अछि अर्थ-प्रयोजन ? कहिअ यथार्थ,
तुअ मन एहन विखिन्न देखि मन मोर
व्याकुल अछि, झट कहिअ, उपाय अवश्य
करब, त्वरित मेटव तुअ चित्तक आधि ।''
सुनि भगिनी मृदु-वचन भेल सोत्साह
मन-मन कीचक, बाजल भरल विषाद,
''देवि, विषम-विषमय नागिनि हिअ मोर
दंशल, अछि सन्तप्त विकल मम प्राण,
औषध विषक ओएह विष अछि जग एक,
पुनि-पुनि नागिनि-दंशहिँ बाँचत प्राण ।
नागिनि थिक तुअ पोसल दूध पिआए ।''
व्यङ्ग्य-कथा सुनि अनुजक विस्मित-चित्त,
पूछल नृप-महिषी पुनि,

''कहिअ बुझाए
अनुज, कथा सब, व्यथित हृदय तुअ जन्य।''
बाजल कीचक, अति कातर अति दीन,
''देवि, तोहरि अनुचरि सैरन्ध्री आज
सुन्दर रूप देखाए हरल मन मोर ।

सोदर-जीवन यदि तुअ प्रिय कल्याणि,
साधिअ मिलन त्वरित मम सुन्दरि संग।''
सूनि सहोदर-वचन सुदेष्णा भेलि
आश्चर्यित विषण्ण-मन चिन्तित–चित्त,
पुनि बुझाए सोदरहिँ कहल सविषाद,
'अनुज, आज की सुनइत छी हम कान,
कीचक तुअ विवेक नवनीत समान,
अनुचरि-रूप-रश्मिसँ पघिलल आज।
बाजह शूर-हृदय तुअ प्रस्तर-तुल्य,
की थिक प्रस्तर वर्षोपल, गलि गेल
एह विधि भए उत्तापित नारी-जन्य,
नारी पुनि सैरन्ध्री, अनुचरि तुच्छ
निस्सहाय, परदारा तुअ उपयुक्त
नहि कथमपि। कए स्मरण अपन कुलशील
कुल-गौरव, चेतह मन, वीरक धर्म
इन्द्रिय-दमन, न एहन लोलुप-वृत्ति।''
उपालम्भ बहिनिक सुनि आतुर-प्राण
कीचक भेल विकल–मति, जन चिर-रुग्ण
मिषगक सुनि संयम-साधन उपदेश।
बाजल पुनि भए विह्वल कातर-कण्ठ,
''कोन परि देवि, बखानि कहब तोहि आज
दुस्सह अपन पराभव, लेल चोराए,
सुमुखी सैरन्ध्री सोदर-सर्वस्व।
यदि नहि शीघ्र मिलाओब सुन्दरि सङ्ग
ध्रुव जानिअ मम व्याकुल जीवन अन्त।
सोदर-शोक-शूल तुअ हृदयहिँ देवि,
रहत निरन्तर, होएत पुनि अनुताप।''

कीचक पाप-वचन सुनि भए अति क्रुद्ध,
कहल सुदेष्णा,

''चपल, पापमति, मूढ़,
अछि भावी अधलाह, भेल तुअ ज्ञान

लुप्त आज, चाहह अबला असहाय
जीवन नाशए, किन्तु जाहि असहाय
जानि मन्द-मति उपजल तुअ मन पाप,
रक्षक तकर पञ्च-गन्धर्व प्रवीर !
यदि हठ कए परसब तनि तन सुकुमार,
जानिअ जीवन अन्त, मोहि परचारि
रहलि एतए सैरन्ध्री । कए चितचेत
तेजह पापमति, हालाहल विष-पान
करह न जानि, हरत जे निश्चय प्राण ।''
सुनि कीचक बाजल पुनि,

'देवि न तोहि,
विदित केहन दारुण मन चित्तक आधि,
कोन विधि तुअ अनुचरि कौशल कए आज,
हरल मोर मन तें तुअ एहन विचार ।
कहिअ पञ्च-गन्धर्व सुरक्षक ताहि !
शत-सहस्र अगनित वा यदि गन्धर्व
आओत मम सम्मुख, एकसर हम ताहि
हतब, कतए पुनि गनिअ पञ्च-गन्धर्व ।
तुअ निज चरित सरल अति विमल, पवित्र
कोन परि जानब पापिनि-चरित दुरूह ।
सत्य कहिअ हम देवि, जाहि असहाय
जानि शरण दए राखल अछि एहि ठाम,
निश्चय होएत एक दिन तुअ हिअ शल्य ।
जनि तस्कर धारण कए भिक्षुक-रूप
लागए यात्रा-बीच पथिकदल सङ्ग,
पुनि अवसर उपयुक्त देखि धन-राशि
लए झट जाए पड़ाए, ताहि विधि देवि,
सैरन्ध्री तुअ पति-मन-हरण-निमित्त
अछि आइलि, अछि अनुचरि भए एहि ठाम
नृप-मन रूप-जाल-विच लेत बझाए
निश्चय अवसर पाबि, किन्तु यदि देवि,
मानि हमर हठ, साधब काज विचारि,

हमर प्रेयसी जानि न नृपति कदापि
सस्पृह दृष्टिपात कथमपि करताह ।
जन सुबुद्धि करइछ भावी सुविचारि
निज-मङ्गल-साधक सुचतुर सब काज ।
देवि, अनुज आएल तुअ पद-तल आज
तुअ कर न्यस्त आज अछि जीवन मोर ।''

कीचक चतुर बचन सुनि चिन्ता-मग्न
भेलि सुदेष्णा शङ्कित अस्थिर-चित्त,
किंकर्तव्यविमूढ़ मौन किछु काल
सोचल 'की कीचक कहइत अछि आज,
की मम पति-मन हरण लक्ष्य अबधारि
आइलि अछि सैरन्ध्री ? अनुचरि-रूप
की अछि देखल कतहु एहन कमनीय ?
नहि थिक ई रमणी साधारण नारि ।
नहि अछि एतए अकारण अनुचरि-रूप ।
त्रिदश-रमणि सम अनुपम मादक रूप
निरखि नृपति लोलुप-मति निश्चय मोहि
तेजि जाहि वश होएत । होएत मोर
तखन कोन गति ? जाहि जानि असहाय
राखल दए आश्रय, पुनि जकर चरित्र
अछि देखल अद्यावधि निर्मल स्वच्छ,
होएत एहन पापमय ? की छलपूर्ण
छल सब कथा ओकर ? होइछ सन्देह ।
की क्षति ताहि पठाबिअ कीचक पास ?
यदि ई थिक पापिनि कुलटा ध्रुव जाए
करत कीचकक प्रणय ततए स्वीकार,
हमहुँ होएब निश्शङ्क । होइति ई नारि
यदि पवित्र, नहि कीचक कोटि-प्रयत्न,
सकत ताहि बिचलित कए; पुनि भय कोन ।'
कहल नृपति-रमणी सोदर सँ मन्द
'यदि एहन हठ तोहर, जाह निज गेह,
ताहि पठाएब ततए कोनहु छल आज ।''

सुनि भगिनी-उत्तर अभिमत-अनुकूल,
कीचक अति प्रमुदित-मन, भए सोत्साह
भगिनी-चरण-रेणु निज मस्तक धारि,
चलल अपन गृह सत्वर, चञ्चल-चित्त,
मन बँटइत लूटब आनन्द अशेष,
जनि तस्कर प्रहरी-गण काँ परतारि,
आसब ताहि पिआए प्रचुर कए मत्त,
जाइछ करए हरण संरक्षित-कोष ।
पहुँचल कीचक भवन त्वरित, तत जाए
लए सुगन्ध अभ्यङ्ग कएल पुनि स्नान
रुचिर पीत चीनांशुक कए परिधान
कस्तूरी - काश्मीर - तिलक अभिराम
धारण कए कुण्डल-अङ्गद-केयूर
वलय कनकमय रत्नजटित सब दिव्य
कण्ठहार विद्रुम - हीरक- गोमेद
इन्द्रनील - मुक्ता - मानिक - वैदूर्य्य
पुष्पराग - गारुत्मत - खचित विचित्र,
पहिरल पुनि नवमल्लिकाक वनमाल,
नाग-वल्लि दल मृगमद केसरि-सङ्ग
लए पुनि खाए, विलोकल दर्पण-बीच,
निज तन-रुचि, जनि वारवधू-गण हेर
सन्ध्या समय साजि सोड़ह श्रृङ्गार
तन-सुषमा अति गर्वहिँ, निश्चय मानि
दर्शक-मनमोहक निज सज्जित गात,
पुनि-पुनि दर्पण बिच देखए निज रूप
पुनि-पुनि नव-विधि साजए तन-श्रृङ्गार ।

अति उल्लास भरल प्रमुदित मन जाए
बैसल पुनि पर्य्यङ्कहिँ, जत छल रम्य
सज्जित निर्मल-कुसुम-सेज कमनीय,
लागल करए प्रतीक्षा निश्चय मानि
सैरन्ध्री-आगमन ततए अविलम्ब ।

भावए मन-मन, 'ध्रुव सैरन्ध्री आज
मानत जोवन धन्य पाबि मम सङ्ग
नहि छल स्थल उद्यानक ओ उपयुक्त,
चतुरा नारि बढ़ाबए रसिकक प्रेम
कए निरोध, आयासहिँ हिअ बिच दाबि
दुर्दम काम-यातना । हृदय हताश
होअह जनु, यदि तोहि कएल उद्‌भ्रान्त
सुन्दरि सुर-वनितोपम रूप देखाए,
के जग तकर उपासक तोहर समान ?
रूप, वयस, बल, धन, ऐश्वर्य्य, प्रभुत्व,
ककर हमर सन जे नहि आओति पास
बाहु-पाश दए कण्ठ, करए उपभोग,
जीवन-सुख निश्शेष एतए अविलम्ब ।''

दुस्सह मदन-पराभव-विह्वल-चित्त,
कीचक छल करइत मन-मन अनुकूल
विविध कल्पना । कल्पित ध्वनित अकानि
भावए आइलि सैरन्ध्री, तजि धैर्य्य
भए उद्‌ग्रीव विलोकए भए अति व्यग्र,
यथा कौतुकागारहिँ नव – परिणीत
करइत वधू-प्रतीक्षण चञ्चल-चित्त,
छन-छन भावए आइलि कामिनि पास,
सुनि-सुनि कल्पित मञ्जीर-ध्वनि कान,
किन्तु जानि निज भ्रम, आतुर, असहाय,
द्विगुणित होअए व्याकुल, चञ्चल, खिन्न ।।

पल पल कटइत जनि बीतए कए वर्ष
कीचक मृग-मरीचिकहिँ पड़ल अधीर
तकइत बाट बिताओल काल कतोक ।।

●

चतुर्थ सर्ग

देखू, क्षितिजसँ–इन्दु कलाक समान
मत्स्यराज–अन्त:पुरसँ बहराए
के थिक सुन्दरि सुर-रमणी-अनुरूप
जाइत राजपथहिँ, एकसरि सुकुमारि
मत्त-चकोर-नयनि, निज-पद-नख-चन्द्र-
बद्ध-दृष्टि, गज–गामिनि ! किअ मुखकञ्ज
अछि एहन विवर्ण, किअ विद्रुम-कान्ति
अधर स्फुरित सङ्कुचित कुटिल भ्रूपक्ष्म,
छुटइछ अन्तर्ज्वाल-पूर्ण नि:श्वास ।
भाबिअ कामिनि-किसलय-कोमल चित्त
पाओल गुरु-आघात, वेदना-पूर्ण
उठइ प्रबल तरङ्ग हृदय-सर-बीच ।
देवि कल्पने, चलु सुन्दरि-उपकूल
सुनिअ मनहि मन की भावए सुकुमारि ।

'विधि, हम कएल कोन एहन अतिघोर
पातक, जाहि जन्य तुअ ई व्यापार,
पुनि-पुनि दु:खावर्त बीच मोहि फेकि
दुर्गति करिअ एहिविधि ? की मम जन्म
द्रुपद-राजकुल मध्य भेल एहि हेतु ?
जाहि ग्रहण–कामातुर नृपति-समाज
अतुलित रूप-राशि-बल-धन-ऐश्वर्य्य
छल आएल पञ्चाल करए पण पूर्ण,
लए लए अगणित प्रबल वाहिनी सङ्ग,

विविध रत्न-आभूषण-सज्जित अङ्ग,
की थिक सएह पाणि मम बहइत आज,
पान-पात्र ई निर्दिस दासी-रूप
भए अज्ञाप्त सुदेष्णासँ, झट जाए
कीचक-सद्म सुरा आनिअ मम हेतु ।

की छल से दिन जखन स्वयंवर बीच
नृप-दल प्राणपणे चेष्टल, कए पूर्ण
पूज्य पितापण, जीतब राजकुमारि,
किन्तु अशक्त हताश जखन सभ भेल,
जखन पिता भए आतुर कहल, "यथार्थ
भेल वीर विनु मही, रहति मम पुत्रि
अपरिणीत की ? एक न तादृश वीर,
तादृश निपुण धनुर्द्धर जे प्रण पूरि
ग्रहण करत ई कन्या शची-समान ।"
सुनि फाल्गुन-पादाहत नाग समान
आयत लोचन रक्त, स्फुरित अधरोष्ठ,
लपकि लेल कोदण्ड हठात् उठाए,
अनायास कए लक्ष्यभेद देल पूरि
पिता मनोरथ, चूरल नृप-दल-दर्प
हरल हमर मन, किन्तु केहन दिन आज
कुरु-कुल-वधू सएह हम कुपुरुष-गेह
निस्सहाय एकसरि छी जाइत आज,
निशि बिच दासी "वृत्ति-विवश, जनि जाए
बलिवेदी दिशि रज्जु-बद्ध पशु जानि
ध्रुव वध अपन, किन्तु सब विधि असहाय ।
भुजबल-भू-विजयी भूपति-शार्दूल
पति-सम्पादित राजसूय-मख बीच
जे तन पाओल अति पावन अभिषेक
से तन करइत दुस्सह दासी-वृत्ति
पाओल आज केहन कुत्सित अपमान ।
कीचक दुष्ट, जेहन कत मम-पति-भृत्य,
कएल पापमति मम प्रति, बाजल स्पष्ट

गुनि जनि वारवधू मोहिं, प्राण कठोर
तदपि न तेजल तन सम्प्रति, असहाय
जाइत छी हम एकसरि ताहि निकेत ।
कहल सुदेष्णहिँ, 'स्वामिनि' आन पठाए
साधिअ काज, न उचित पठाएब मोहि
एकसरि ततए, कहल से भए अतिक्रुद्ध,
''की तोहि तन– सौन्दर्य्यक एहन गर्व
होएत कीचक विचलित रूप निहारि ?''
''तन-सौन्दर्य्य''! कतए मम तन-सौन्दर्य्य,
कटइत एहिविधि दासी-जीवन तुच्छ ?
स्मृति, किअ पूर्वक सुखमय दिन मन पारि
वेधह शत-शत विषम शल्य हिअ बीच ?
अछि एखनहु हृत्पट–अङ्कित से चित्र
जखन धनञ्जय सुरपुरसँ नव आबि
वन बिच, निर्झरणी–तट चिन्ता-मग्न
शिला–पट्ट पर बैसल अन्यमनस्क
रहथि कपोल राखि करतल, हम आबि,
किछु छन तरु–अन्तरसँ करइत पान
रहलहुँ चिर तुष्णातुर नयनहिँ ठाढ़ि
मुख–सरसिज सुषमा–मधु अमृत समान,
पुनि भए प्रकट त्वरित भए पिअ–उर–लग्न
प्रेमावेश–विभोर छलहुँ कत काल ।
पूछल पुनि, 'अछि कारण कोन विशेष
असमय तुअ मुख–सरसिज एहन मलान ?
की सुरपुरक केओ चतुरा सुकुमारि
रूप–जाल बिच तुअ मन धएल बझाए
जाहि बिरहंस अछि ई गति तुअ भेल ?
सुनि, कए दृढ़ परिरम्भण, चूमि कपोल
जे सुख सुमरि पुलकमय एखनहुँ अङ्ग
कहल विहुँसि, 'भामिनि' एहि त्रिभुवन बीच
के जनि एहन जकर तन–रुचि सम पाब
तुअ तन–रुचिक, भीरु ! निर्भय, निश्शङ्क
रहिअ, न जे जन अमृत पीबि अघाए,

कखनहुं से होइत अछि आसव–लुब्ध ।
चिन्तातुर हम छलहुँ अवधि नहि बीत
त्वरित, जखन कए अरिदल-दर्प विदीर्ण
तुअ अपमानक कए समुचित प्रतिशोध
पाओब शान्ति व्यथित हिअ, भाविअ किन्तु
समय खञ्ज अछि भेल, प्रगति अति मन्द ।
कोनपरि बिसरब से दिन एकसरि क्लान्त
छलहुँ जखन हम कनइत निर्जन पाबि
ओहि विधि सभा-सद्म-बिच सहि अपमान
दु:शासन-कृत, बिलुलित केश-समूह'
उत्तरीय-पट-हीन विवर्ण शरीर
करइत एक-एक कें भूषण-हीन
अङ्ग-अङ्ग, विस्मृत-तनु, चित्त अधीर,
जखन वृकोदर वीर-केशरी भीम
दूरहिँ ठाढ़, देखि मम व्याकुल रूप
छाड़ल क्रोध-विवश गुरुतर निश्वास
आहत नाग समान, जाहि आकृष्ट
भए हम सहमि भेलहुँ उठि कनइत ठाढि
रुद्धस्वर, विवर्ण-मुख, कम्पित-गात,
अश्रु-आवरण-कारण तनि व्यापार
देखि न पाओल, पाओल किन्तु शरीर,
प्रियतम-हृदय-लग्न, आवेष्टल कण्ठ
हमर वाम भुज तनिक,करस्थित भेल
मुख मम, दक्षिण हाथहिँ केश सम्हारि
पोछि नयन धए चिवुक चूमि अधरोष्ठ
स्फुरित अधर सँ कहल मेघ-गम्भीर
'मानिनि, तुअ असह्य एहन व्यापार !
करत अचिर तुअ किसलय जीवन अन्त ।
प्राणेश्वरि, तुअ सरसिजमुख अवलोकि
सह्य कोनहु विधि हो गिरि सम गुरु क्लेश ।
दुर्दिन-जन्य तमोमय जीवन बीच
दीपक-रूप करिअ आलोक प्रदान ।
तुअ विनु पाण्डव करत स्वजीवन नाश ।

कोन परि अरिदल पाओत समुचित दण्ड
खल उद्दण्ड कुकर्मक, यदि निज प्राण
नाशब एहि विधि ? सुन्दरि, करु विश्वास,
जे जन कएल तोहर एहन अपमान
ध्रुव हम हतब ताहि, मृदुभाण्ड समान
करब चूर्ण मस्तक, करइत उपहास ।
जे छल हँसइत उन्नत अवसर पाबि ।
एखनहु एहि भुजक अछि एहन गर्व
एकसर सकल अरिक मर्दन कए मान
तोषय तुअ मन, किन्तु एक प्रतिबन्ध
अछि अग्रज-अनुशासन, धारिअ धीर
यदि जीवनक न आन प्रयोजन तोहि
राखिअ एहि, सुहासिनि, अरिदल-दर्प-
दलन-दृश्य-दर्शनक निमित्त तथापि ।
जखन पाबि आज्ञा समुचित अनुकूल
अतुलित धीर धर्मराजक अविलम्ब
शत्रुपक्ष विध्वंसब, जनि करि मत्त
कर विचूर्ण कदली-वन तुण्ड प्रहारि ।''
प्राणेश्वर, तुअ कथा सुमरि सभ क्लेश
सहइत समय बिताओल, धए हिअ आब
फिरत सुदिन, मेटत चित्तक सब आधि
किन्तु आज नहि राखब सम्भव प्राण ।
कोन परि एकसरि निशि बिच कीचक-गेह
जाएब ? कीचक, पापात्मा, उद्दण्ड,
बल-प्रमत्त, कामान्ध, करत मोहि पाबि
निरबलम्ब अबला सब विधि असहाय
बल-प्रयोग ध्रुव, कोन परि बाँचत धर्म ?
पूर्वहिँ हम विष खाए मरब एहि ठाम ।
एखनहिँ हम करइत छी जीवन अन्त,
मरब, न पाओत हृदय कुटिल शरघात
भाग्यक पुनि-पुनि, उबरब उदधि अगाध
भव-असह्य-अधिक, पाओत चिरशान्ति
जर्जर तन, नहि तुच्छ जनक अपमान

हम पुनि सहब, मरब एखनहि विष खाए।
धर्मराज, राखिअ निज धर्मक टेक ।
अतुलित धीर, धैर्य्य धए, तकइत बाट
उचित अवसरक, चललहुँ हम तन त्यागि
यदुकुल-केतु, आज हम जीवन अन्त
कए तुअ करब समस्त मन्त्रणा व्यर्थ ।
अर्जुन, विफल सकल तुअ भेल प्रयास,
की लए करब पाशुपत । प्राण-समान
तुअ पत्नी कुपुरुष-भय आज हताश
नाशए तन । अतुलित-बल-कौशल भीम,
तुअ जाया अवनी तजि जाइछ आज,
तजि अवनी, लए सकल मनोरथ सङ्ग
अरिदल-दलनक । करओ भोग निर्द्वन्द्व
दु:शासन सुख सकल, सुयोधन, राज्य
विपुल समृद्धि, भाग्य तुअ अछि बलवान ।
शठ शकुनी, तुअ कुकृतिक समुचित दण्ड
नहि छल लिखल देखब मोहि । हम हतभाग्य
नियति-प्रतारित, भव-दुख भोगि अशेष,
जानि असत्य सदा करइत सत्कर्म
नहि जन पाब पराभव तेज शरीर
चललहुँ । सुनितहिँ गति ई हमर हताश
भए लज्जित पाण्डव निश्चय तन नाशि
त्वरित अकण्टक करता महि तुअ हेतु ।
रहि जाएत जग बीच एक उपहास
छल अतुलित-बल पाण्डव करइत गर्व
त्रिभुवन-विजयक, द्यूतहिँ हारल राज्य
वन-वन बौआएल निर्धन यति-वेष,
दास-वृति कए कएल स्वजीवन अन्त
पत्नी-कारण, पत्नी अबला भीरु
नाशल जीवन भए सब विधि असमर्थ
निज सतीत्व-रक्षणसँ ।

अबला, भीरु,

की हम द्रुपद-राजकुल पाओल जन्म
अबला भीरु कहाबए ? क्षत्रिय-केतु
पाण्डु-वधू भए, अबला भीरु कहाए
मरब ? वीर-पुङ्गब पति की एहि हेतु
पाओल, कलुषित करब तनिक यश शुभ्र
अबला भीरु कहाए ? हरे, जगदीश,
दीन-बन्धु, अशरण-गति, राखिअ लाज,
करिअ कुलोचित आत्मबलक वरदान ।
क्षत्रिय-पुत्रि, वीर-पत्नी, कुलनारि
निर्भय हम जाइत छी कीचक-गेह ।
जे विभु कौरव-सभा मध्य मम लाज
राखल, जे विभु कएलन्हि ओहि विधि त्राण
सिन्धुराज सँ, से विभु-निश्चय आज
भए सहाय रखताह धर्म अक्षुण्ण ।
शार्दूली की कखनहु पावए त्रास
जम्बूकक ? की कतहु ज्वलित अङ्गार
तृण-चय सकए झाँपि ? की चम्पक-वास
भ्रमर तुच्छ कए सकए कतहु उपयोग ?
जें हम कएल न तजि पाण्डव-पति पञ्च
आन पुरुष प्रति कखनहु स्वप्नहुँ चित्त,
बाँचत ध्रुव सतीत्व अक्षय-धन राशि ।
अनल-शिखा-आलिङ्गन-शील विमूढ़
क्षुद्र पतङ्ग समान होएत जरि भस्म
अपनहि कीचक । देव, पितर, गुरु, बन्धु,
तुअ पद-कमलहिँ हमर अनन्त प्रणाम ।
आत्मबलक करु आशिष अमित प्रदान ।

एहि विधि चिन्तन-शील द्रुपद-नृप-पुत्रि
हुतबह-चपल-शिखा सम तन उद्दीप्त
मन्द मन्द पहुँचलि कीचक-गृह द्वार ।

पंचम सर्ग

देखिअ शशधर-किरण-धवल तरु-सौध
वन-उपवन, जनि एहिखन उद्धृत भेलि
क्षीरोदधि सँ धरणी । तम भए त्रस्त
तरु-निचयक आश्रय धए रहल नुकाए ।
उच्च-नीच सित-असित सकल समभाव
हो लक्षित, जनि ज्योत्स्ना-मदिरा पान
कए भए उन्मद सभ बिसरल सभ भेद ।
छाया-जन्य असित सित शशिकर-जन्य
चउदिसि शोभित उपगत यथा प्रयाग ।
चन्द्रकिरण-चुम्बित विकसित कमनीय
विविध कुसुम झूमए आनन्द-विभोर
पवन सङ्ग करइत आमोद-प्रदान ।
लोलुप मधुलिह मधुर-रेणु-रस-आस
चउदिशि नाचए करइत सुमधुर गान ।

शोभित नभहिँ शशाङ्क परम अभिराम
पूर्ण-हासभर आनन, की जन पेखि
करइत पौरुष-मद किछु उन्नति पाबि
करइछ शशि उपहास, भावि जन मूढ
नहि पाबए उपदेश नभहिँ नित देखि
उन्नति-अवनति हुनक, नियति-क्रम-जन्य।
तारक न्यूनाधिक द्युतिमान असंख्य
पूरल गगन विधाता की एहि हेतु
देखओ जन, जनु होअओ निज-गुण-मत्त,

जनु पुनि होअओ हताश पाबि गुण न्यून,
विश्वमध्य अछि ककर गर्व अक्षुण्ण ।

एहि अवसर कीचक देखल निज द्वार
आगत सैरन्ध्री रति-अपर समान ।
जनि अगाध सागर-बिच जतए तरङ्ग
उठइछ प्रबल-पवनकृत पर्वत-तुल्य
डुबइत नर पाबए नव-जीवन दान
देखि समीप समागत ईप्सित नाव,
तादृश कीचक मदनोदधि-बिच भेल
देखि द्रौपदी ततए, तेजि पर्य्यङ्क
कामातुर, अगुआए भेल झट ठाढ़,
जनि दिनकर सहस्र कर सँ कर पान
सरसिज-रस, तादृश निज नयनहिँ पान
करइत तनि मुख-रुचि-रस कहल अधीर
कम्पित-स्वरहिँ,

"चन्द्रमुखि ! तजि भय लाज
शोभित करिअ हमर सज्जित पर्य्यङ्क,
तजि सङ्कोच करिअ आदेश प्रदान
निज इच्छा अनुकूल, पुराओत शीघ्र
तुअ सौन्दर्य्य-क्रीत पद-गत तुअ दास ।
प्रस्तुत विविध भोज्य अछि विविध प्रकार,
मणिमय भूषण माल्य तथा परिधान,
मदन-अनन्य-सहायक दुर्लभ दिव्य
प्रचुर वारुणी अछि प्रस्तुत तुअ हेतु ।
निज-भुजपाशहिँ बान्हि, सुहासिनी, मोहि
साधिअ सभ अपराधक शास्ति यथेच्छ
सुन्दरि, तोहि अङ्क भरि दुर्लभ कोन
जगतहिँ रहल दस्तु मम ईप्सित आस
जनि जन पाबि परसमनि गनइछ तुच्छ
इतर सकल धन विभव तथा तुअ पाबि
अधर-अमिअ-रस महि-मण्डल-सुख-सार

भए अनन्य-रत ससुख बिताएब काल ।
निश्चय कीचक तुल्य एखन नहि आन
भाग्यवान, हम पाओल रति-अनुरूप
हरिण-नयनि जगतीतल-सुषमासार ।
तोहरहु, कामिनि, की अछि ईप्सित आब ?
के अछि हमर समान पुरुष महिवीच
सुन्दर रसिक सर्वथा तुअ उपयुक्त
केलि-कला-पण्डित ? अविदित नहि तोहि
हमर प्रचण्ड प्रभुत्व, वाहुबल-दर्प ।
तुअ भय काँपत सतत समस्त विराट,
पुरत सकल इच्छा तुअ बिनु आयास,
अचिर सकल महि-मण्डल अनुपम भोग्य
करइत भोग,पाबि भर्ता अनुरूप
देव-मनोभव-उत्सव बिच भए मग्न
यापिअ काल नितम्बिनि, तजि सङ्कोच ।
मानिनि, तुअ असह्य होइछ व्यापार,
उचित न आहत विजितहिँ करब प्रहार ।
तुअ आघातहिँ मूर्च्छित अछि मम प्राण
अधर-अमिअ रस-दानहिँ राखिअ एहि ।''
सुनि मनस्विनी कृष्णा भए गम्भीर
अति दृढ़ स्वरहिँ कहल,

'सेनापति, फेरि
कहइत छी परचारि, न तुअ व्यापार
होइछ सह्य, तजिअ दुर्मति शुभ-हेतु ।
यदि पुनि कखनहु करब एहन मति नीच
होइत सएह गति जे गति पाओल पूर्व
परदारा-अभिभर्शक, निश्चय जानु ।
नहि हम वारबधू, हम सत्कुल-नारि'
मोहि पठाओल अछि रानी एहि ठाम
आनए आसव, छथि ओ तृषित विशेष ।
शीघ्र पात्र भरि दिअ, जाएब अविलम्ब ।''
सुनि कीचक हँसि कहल,

"सुन्दरि, तोर
अछि अबला-मति लाजुक, कोन विधि सह्य
कीचक तोहर करत ई दासी-वृत्ति ?
आसव लए जाइत अछि एहिखन आन !
तजि अनुचरि-पद गहिअ अपन अधिकार
कीचक-हृदयेश्वरि भए । कामिनि, जाहि
सेवा-निरत छलहुँ से स्वजन समान
करति सतत व्यवहार, रहति भयभीत ।
मानिनि, आब न शोभए तोहि विलम्ब
हेरिअ, सुमुखि, हास-भर नयनहिँ मोहि ।
कोन परि चिर-तृष्णातुर व्याकुल-प्राण
करत सह्य सुन्दरि, दुर्दम पीयूष ?
कत छन सुमुखि, सकत कए अपन निरोध
अतिशय क्षुधित विकल-मति आतुर प्राण
उपगत पाबि अमृत-फल मानस-चोर ।
लेब त्वरित हम भुज भरि हृदय लगाए ।
मालति-उन्मादक सौरभ - आकृष्ट
सुमधुर मधु - मकरन्द - लुब्ध, उन्मत्त,
उपगत अति आतुर भ्रमरहिँ कत काल
बाधत कहु मृगलोचनि, मलय-प्रकम्प ।"

ई कहि कीचक लए कर आसव-पात्र
कएल यथेच्छ पान, पुनि आसव ढारि
दिव्य पात्र भरि बढ़ि झट उपगत भेल
द्रुपदराज-तनयाक, यथा करि मत्त,
कहइत,
"सुन्दरि, करिअ माधुरी-पान,
हरत त्वरित ई तुअ अवलोचित लाज ।"

आबि समीप विलोकि तनिक मुखकञ्ज
पुलकित-तनु, कम्पित कर, कएल प्रयास
धए कृष्णा कर लए जाएब गृह बीच ।
मणि-मय-अङ्ग रीय-युत कम्पित-पाणि

बढ़इत देखि अपन दिशि गत-मर्याद
कृष्णा भेलि विकल-मति, अतिशय चौंकि,
जनि जन मणि-युत भोगिराज-फण देखि
उठइत अपना दिशि होइछ भय-त्रस्त ।
ठामहि पान-पात्र पटकल सुकुमारि
अतिद्रुत-पदहिँ पड़ाइलि करइत नाद
परम आर्त, 'हा देव, नीच पापिष्ठ
बलात्कार करइछ अबला अवधारि ।''
कीचक पुनि, जनि होअए क्षुधातुर सिंह
सम्मुख आगत भक्ष्य मृगीकेँ देखि
जाइत त्वरित पड़ाइलि, भेल प्रचण्ड
क्रुद्ध, रक्त – विस्फारित – घूर्णित – नेत्र
उद्ध्र्वदन्त सँ काटि स्फुरित अधरोष्ठ,
कुञ्चित भृकुटि सवेग दीर्घ-निश्वास
छाड़ए पलपल यथा उरग संक्रुद्ध ।
अति वेगहिँ अनुधाओल, कहइत ताहि
'कुलटे, व्यर्थ आब तुअ सभ आयास,
झोंट पकड़ि तोहरा घिसिअबइत आनि
देखह कोन दशा करइत छी आज,
कीचक क्रोधानल सँ तोहर त्राण
के करइछ देखब हम तकर स्वरूप ।''
ई कहि लपकि धएल तनिकर कर वाम ।
कीचक-परसहिँ सती द्रौपदी-देह
व्यापल जनि विद्युत केरि प्रबल तरङ्ग ।
क्रोध-क्षोभ-भय-घृणा-उभयकुलगर्व-
संप्रेरित भए भीम-प्रिया सुकुमारि
कए सञ्चित बल सकल, देल झटकारि
कीचक-कर तत्काल, मुक्त कर पाबि
द्रुततर वेगहिँ चललि पड़ाए निंछोह
जनि कराल मृत्युक मुख सँ भए मुक्त !
वेगहिँ कीचक ठामहिँ निपतित भेल
छिन्न-मूल जनि शाल महीरुह दीर्घ ।
झट उठि सम्हरि झाड़ि तन चउदिसि हेरि

कुसमय-पतन-पराभव-विह्वल-चित्त
क्रोध-विवश थर-थर तन लोचन लाल
जनि अङ्गार-खण्ड, रद घर्षण-शील,
द्रुपद-पुत्रि-अनुधावन-रत, हतचेत,
चलल क्षिप्रतर बेगहिँ जनि विक्षिप्त
कृष्णा अति द्रुत पदहिँ पड़ाइलि जाए
भूधरसँ निपतित सरिताक समान,
पवन-वेग-युत मेघ-खण्ड सम ताहि
अनुसर कीचक, द्रौपदि नागिनि-तुल्य
कीचक यथा गरुड़ खगनायक तुल्य
द्रुपदराज तनया केकय-सुत बाझ,
हरिणी सम पाञ्चाली कीचक व्याघ्र ।
नहि छल तन वसनक सुधि, रहि-रहि देखि
भय-कातर नयनहिँ, कए ग्रीवा-भङ्ग
धावन-रत कीचक पाछाँ कत दूर
अछि अबइत, पुनि दुगुनित कए आयास
धाबए वेगहिँ, यथा मृगी वन वीच
मृगया-लुब्ध-वनेचर-विस्तृत-जाल-
बिच बझइत-बझइत कोनहु विधि बाँचि
चलए पड़ाए, किन्तु पाछाँ झट देखि
अबइत दौड़ल लगुड़-हस्त, अति क्रुद्ध,
अपन-शमन-सम दारुण-रूप किरात
यथासाध्य द्रुततर कए वेग पड़ाए ।

विधि, तुअ हिअ थिक केहन कठिन पाषाण
की तुअ नयनहिँ नहि आबए भरि नोर
कुरुकुल-गेहिनि केरि एहन गति देखि ?

षष्ठ सर्ग

अछि सम्प्रति विराटपुर निद्रा मग्न,
पुरवासी नर वनिता बालक वृद्ध
सकल सुषुप्ति सरिद्विच भासल जाए,
बिसरि-बिसरि निज ऐहिक आधि समस्त,
भए किछु काल सकल बन्धन सँ मुक्त ।
की जन अविरत अपन कर्मफल भोग
करइत होएत श्रान्त, हताश, विरक्त,
भावि कएल विधि ई विश्राम-विधान ?
भाग्यवान भव-वैभव पाबि समृद्ध,
भाग्यहीन सहइत अभाव-सन्ताप,
सब पाबए निद्रा-प्रसाद सम-भाव ।
विविध- श्रृंङ्खला-विजड़ित मानव-जाति
हिअ बिच उपजि नित्य अगणित अभिलाष
ततहि बिलाए यथा बुदबुद जल-बीच,
कत अभिलाषक बीज हृदय-मरुबीच
रहए विलीन निरङ्कर, दैन्य-निदान,
पुरए ताहि कोनहु विधि अवसर पाबि
स्वप्नक कए आरोहण दिव्य विमान
दीन मनुज विहरए इच्छा-अनुकूल ।
रक्तबीज-सम मनुज-स्पृहा दुरबार,
तृप्तिक साधन वदिक चन्द्रमा-तुल्य,
मानव मुग्ध अकिञ्चन, इन्द्रिय-दास,
द्रौणिक दुग्धपान कए मन परतार !
के ई एकसरि एहन विजन पथ बीज
एहि निशीथ मध्य गृहसँ बहराए

जाइछ वेगहिँ तजि निद्रा, तजि सेज ?
नहि अछि तन-वसनक सुधि, मन संलग्न
कतहु एकर अछि कोनहु हेतु उद्विग्न ।
की ई थिकि विक्षिप्ता लक्ष्य विहीन
नदी-बेगसँ यथा वृक्ष भसिआए
बौआइत चलि जाइछ ? अति सुकुमारि,
अति सुन्दरि, सुर-युवति-तुल्य ई नारि
की करइछ अभिसार अनङ्ग-सहाय ?
चलिअ कल्पने, सत्वर रमणि-समीप,
अवगत करिअ एहि हृदयक सब भाव ॥

''निष्ठुर प्राण, आब भोगए पुनि कोन
दारुणतर दुख, सहए कोन अपमान
गुरुतर, कुत्सित, घोर, न करह प्रयाण
तजि ई तन निर्ल्लज, घृणित, अपवित्र ?
द्रुपद-राजकुल बीच पाबि हम जन्म
कोन न सुख उपभोगल मानव-लभ्य ?
पुत्र-वधू भए स्नेहमयी कुन्तीक
कोन न हम पाओल प्रकृष्ट सम्मान ?
पतिक भाग्य-चक्रक परिवर्तन भेल,
सहइत सब दुख नहि हम तेजल धैर्य्य,
भावि भाग्य-रवि सम्प्रति साँझहि अस्त
होएत ध्रुव प्रभात, ऊगत तिमिरारि ।
बीतल अवधि, गुनथि मासहु सँ न्यून
आब रहल अवशेष, किन्तु, हा दैव !
आजुक दुर्गति, आजुक सहि अपमान
जीवन अछि सम्प्रति दुरूह भए गेल ।
सुमरि ओहि पापिष्ठक घृणित स्वरूप
बेधए शतशत शल्य समस्त शरीर,
जरइछ रोम-रोम अङ्गार-समान ।
जाएब कतए, कोन साधब उपचार,
की कए पाएब शान्ति, चित्त विक्षिप्त ।
अणु-अणु रक्त हमर माङए प्रतिशोध,

वध सद्यः वध मात्र ओकर प्रतिशोध,
किन्तु करब की हम अवला असहाय ?
हमर पाँच पति पुरुषर्षभ पुर-मध्य
छथि सम्प्रति निज परिचय कए प्रच्छन्न
एकसर मत्स्यराज-विध्वंस-समर्थ,
एकसर ओकर पाप-मस्तक कए चूर्ण
सहजहिँ सकथि देखाए शमन-पुर-बाट ।
धर्मराज होएताह न किन्तु सहाय,
हुनका हृदय बीच कत क्रोधामर्ष
याँचब असि, पाएब रुद्राक्षक माल्य,
कहता जप कए अवधिक शेष बिताउ ।
हुनक अनुज्ञा विनु कथमपि न कदापि
यमज धनञ्जय होएता कार्य्य-प्रवृत्त ।
किन्तु वृकोदर वीर-केशरी भीम
बूझि हमर दुख ध्रुव होएताह सहाय,
कथमपि हुनक समक्ष न होएत व्यर्थ
एहि नयनसँ निःसृत दुःखक वारि ।
नोरहिँ पुण्य चरण हम देब पटाए,
चिर दिनसँ झाँपल अछि क्रोध-हुताश,
कहि कहि अपन दुःख, पापीक कुकृत्य,
करब ताहि हम आहुति विपुल प्रदान,
धधकत जखन हुनक प्रचण्ड क्रोधाग्नि,
ध्रुव पड़ि ताहि होएत पापात्मा भस्म ।
सत्वर चलिअ, गहिअ से पद अविलम्ब,
जे साधत प्रतिशोध, होएत चित्त शान्त ।।''

एहि विधि मन मन कए विचार निष्पन्न
द्रुत-गति चललि याज्ञसेनी सुकुमारि
राज-महानस-गृह जत करथि निवास
भीम महाबल बल्लव नाम धराए ।।
नृपक महानस-आलय कर आमोद
दूरहिँ मृगमद-केसरि-हिङ्ग घृतादि
मिश्रित नाना अतरक गञ्ज समान ।

शाल शरर सहकार पलाशक काष्ठ
इन्धन हेतु धएल छल चीरि प्रभूत ।
विविध द्रव्य-निर्मित अनेक लघु दीर्घ
यत्र-तत्र छल पसरल रन्धन-पात्र ।
छल कतिपय पुनि झाँझ करछु अति-दीर्घ,
अस्त्रागारक जे कर हरण गुमान ।
छल लघु कन्दर तुल्य चुल्हिका शान्त,
त्यक्त-अस्त्र हारल योद्धाक समान,
मुख भरि भरल छार पावक कए छन्न,
अर्द्ध-दग्ध इन्धन छल पड़ल अनुष्ण ।
शिलापट्ट छल पर्वत-खण्ड समान,
ताहि चतुर्दिश खसल जीर-मरीचादि ।
रन्धन-शेष व्यञ्जनादिक छल ढेर
ठाम-ठाम । छल औँघराएल कए गोट
वारि-पात्र, जनि आनल कूप उखारि,
प्राङ्गण व्याप्त भेल जल तकर हेराए,
ताहि विमिश्रित व्यञ्जन-अन्नक शेष
भए पर्युषित करए तत गन्ध विचित्र ।
छल आलय-उपान्त ढबकल बहु मण्ड,
दिन-दिन ढबकि गेल लघु-पल्लव-रूप,
क्षिप्त चतुर्दिश पात्र-शेष सिद्धान्न-
व्यञ्जनादि, एकत्रित ततए अनेक
श्वान अरक्षित कर रव ततए विचित्र
गुड़ड़ि गुम्हरि भूकए कत, कत केकिआए,
लड़ए परस्पर बहुविध्रि सहटि पड़ाए,
आबए दौड़ि चिबाबए, चाटए, खाए,
कटकटाए पुनि लड़ए परस्पर घोर ।
खाइत सब भरिपोष शान्त भए, किन्तु
ब्राह्मण-गज-श्वानक जग-विदित स्वभाव,
भए एकत्र लड़ए, मिलि करए न भोग;
जातिक सहज स्वभाव न तेजल जाए !

ततए विशाल कक्ष बिच शय्या पाति
कोमल तृणक, प्रसुप्त वृकोदर भीम,

यथा गहन कानन बिच करभ विशाल,
देखि द्रौपदी सत्वर कएल प्रवेश
सिंही यथा जाए निर्भय निश्शङ्क
कन्दर मध्य सुप्त-मृगराज समीप ।
भीमक शाल समान विशाल शरीर
झाँपल वसन हिमप्रभ शुभ्र समस्त
शोभए तूनल तूलक राशि समान ।
कृष्ण-सर्प-फुत्कार तुल्य चल श्वास ।
देखि ततए प्राणेश्वर निद्रामग्न
उमड़ल कृष्णा नयनहिँ नोरक बाढ़ि,
गिरि-सरिता बढ़ यथा जलद ऋतु पाबि ।
घनी-भूत-सन्ताप-विजृम्भित-काय
छन भरि ततए सकलि ओ रहि नहि ठाढ़ि,
प्रिय-पति-चरणहिँ सहसा निपतित भेलि,
हुचुकि-हुचुकि कनइत अस्फुट कए शब्द,
रहलि चरण लेपटाए । वृकोदर भीम
सत्वर निद्राच्युत भए उठल चेहाए,
विस्मित, चीन्हि, अङ्क भरि त्वरित उठाए,
सपुलक राखल हृदयहिँ ताहि लगाए ।
बाहुपाश दए कण्ठहिँ गेलि लेपटाए
भीम चून-तरु, कृष्णा माधवि-वल्लि,
रुद्ध-कण्ठ-अस्फुट-स्वर, भ्रमर-निनाद,
स्वशन पवन, पुलकोद्गम कण्टक-पुञ्ज,
स्वेद पत्र-चय-भूषण, ओसक बुन्द,
विलुलित केश-राशि, अगनित अलि लुब्ध,
झर रहि-रहि दृग-कुसुम नोर-मकरन्द ।।

सप्तम सर्ग

पुनि पुनि पोछइत द्रौपदीक दृग-नीर
आकुल चिकुर सम्हारि, पकरि युगपाणि
भीम महाबल नहु नहु कहल बुझाए,
"याज्ञसेनि, देखितहि तुअ अनुचरि-रूप
होइत छी हतचेत, न सकब सम्हारि
एहि नयनसँ निस्सृत दुःखक वारि ।
पाबि हिडिम्बक निष्ठुर मुष्टि-प्रहार
जे नहि-विचलल, जे नहि अस्थिर भेल
मगधाधिपक पाबि भीषण आघात,
से अछि सम्प्रति कातर, सुन्दरि, आज
देखि तोहि कनइत, उठु, पोछिअ नोर ।
थिक विपदानल मानव-हेमक जाँच ।
विसरि गेल की जनक-सुताक चरित्र
सहल यातना कत-गुरुतर गहि धैर्य्य ।
वैदर्भीक चरित मन पारिअ भीरु,
करिअ सुकन्या-चरित स्मरण पथ आज,
कोन परि सब खेपल दुर्दिन भए धीर
भेल विपत्तिक अन्त सुखद परिणाम ।
कृष्णे, सहि एतेक दुस्सह सन्ताप?
किअ सम्प्रति छी एहन विचलित-चित्त ?
तेरह वर्षक दुर्घट अवधिक शेष
भेल सुमुखि केवल दिवसहि गणनीय ।
जाहि धैर्य्यसँ गुरुतर काल एतेक
लेल सम्हारि, प्रिये, जनु तेजिअ ताहि ।

कए समस्त नद पार, पाबि उपकूल
भए विचलित डूबब थिक भीरुक काज।''

भीम वचन सुनि द्रुपद-राज-तनयाक
हृदय बीच जनु उमड़ल करुणा-स्रोत,
लागल ढरए नयनसँ अश्रुक धार
रक्तोत्पलसँ मुक्ता-स्रजक समान ।
कए आयास, वेदना-भार सम्हारि
लागलि कहए,

अभागलि आइलि, नाथ,
एहि निशीथ बीच निज वल्लभ पास
नहि सीखए कर्त्तव्यक, धर्मक पाठ ।
ताहि हेतु तुअ अग्रज अति उपयुक्त,
हुनकहि मुख शोभा पाबए उपदेश ।
स्वयं धर्मराजक नामे भए ख्यात
राज्य बोहाए अपन, वन-वन- बौआए
सम्प्रति मत्स्येशक सेवक छथि भेल ।
अछि अवगत हमरा की थिक कर्त्तव्य,
छी जनइत राखए हम अविचल धैर्य्य,
द्यूत-सभा बिच पाँचो पतिक समक्ष
राखल अविचल धैर्य, वनहु कए वास
धैर्य्य न तेजल, छी धएने अद्यापि
अविचल धैर्य्यक पथ गहि दासी-वृत्ति ।
आइलि छी हम पतिकेँ देअए जनाए,
जे बजितहुँ सिहरैछ समस्त शरीर,
परचारए पुनि निज अग्रिम कर्त्तव्य ।''
ई कहइत विह्वल कृष्णा सुकुमारि
कए भीमक आलिङ्गन तन लेपटाए,
स्कन्धोपरि कपोल धए, नयन निमीलि
कएल तीव्र आक्रोश, खसल भए कात
उत्तरीय पट, फुजल केश छिड़िआए
झाँपल कम्पमान हेमप्रभ गात
लागए जनु गिरि शिखरहि मेघक खण्ड
झाँपि पूर्णविधु शोभए दामिनि सङ्ग ।

सुनि पञ्चाली वचन वृकोदर भीम,
भए अति विस्मित चिन्ताग्रस्त नितान्त
कहल, 'प्रिये, झट कहिअ पड़ल की आज
जे बजितहुँ होइछ तोहरा सङ्कोच ।
छलहुँ सुनिद्र, न भल कए देखल रूप,
किअ मुख-चन्द्र भेल अछि एहन मलान ?
नयन युगल लगइछ गुञ्जा सम लाल,
उधसल चिकुर न अछि वसनक सुधि तोहि।
कहिअ कएल की नृपति तोहर अपमान ?
नृप-महिषी की कएल परुष-व्यवहार ?
पाञ्चाली-हृदयोदधि धीर गभीर
किअ भए रहल एहि विधि उन्मर्य्याद ?''
पाञ्चाली पुनि कनितहि बाजलि, ''नाथ,
तुअ मुख निरखि, सुमरि तुअ भल उपदेश
राखल अविचल धैर्य्य, गनल सुख तुच्छ ।
अमितोजस, अगणित-नृपवन्दित-पाद
तुअ अग्रज कें देखि एतए हत-भाग्य
तुच्छ-विवेकहीन नृप-पार्षद भेल,
सेवा-तत्पर देखि धनञ्जय वीर
नारि वेष धए करइत यापन काल
तजि गाण्डीव, ग्रहण कए वीणादण्ड,
यमजक देखि करुण पशुपालक रूप,
देखि तोहि तजि गदा, करछु गहि हाथ,
करइत पाक परक, नहि प्राण जघन्य
तेजल, कथमपि राखल अविचल धैर्य्य
सैरन्ध्री भए करइत सेवावृत्ति,
भए सतर्क पालन करैत सदिकाल
मत्स्यराज-महिषीक सकल आदेश,
घसइत चन्दन, रचइत कुसुमक हार,
करइत नृपपत्नीक केश-विन्यास,
घामहि भीजलि, शिथिल समस्त शरीर
स्वप्नहु कएल न तुअ अनुशासन भङ्ग,

स्वप्नहु कखनहु नहि मानल मन खेद ।
किन्तु जखन नृप-महिषी-सोदर भाए
कीचक नृप - सेनापति कामोन्मत्त
करए प्रणय-प्रस्ताव जानि असहाय
भए सप्रतिभ करए बहुविधि आयास,
भए निरस्त पुनि करइत अत्याचार
राज-सभा विच मत्स्याधिपक समक्ष
कएलक शठ मदमत्त ओहन व्यवहार
की न तखन थिक मरण मोहि वरणीय ?
की न उचित रहि अविचल कए हिअ धीर
राखि धर्म थिक उचित करब तन त्याग ?
दिनकर उगथु प्रतीची दिशि बरु जाए
विश्वक पञ्चतत्व त्यागओ निज धर्म,
हमर पञ्चपति पुरुर्षभ प्रख्यात
से बरु बैसथु बिसरि अपन पुरुषत्व,
पाञ्चाली नहि छाड़ति कथमपि धर्म,
भए कीचक वशगा नहि जिउति कदापि ।

सुनितहि भीम महाबल सत्वर भेल
विस्मित, विवृत-वदन, विस्फारित नेत्र,
पाबि यथा निष्ठुर दम्भोलि प्रहार,
पुनि जनि लहि सहसा शत वृश्चिक-दंश
भए उद्विग्न विषण्ण भेल उठि ठाढ़,
क्रोध-विवश थर-थर तन, मीड़थि हाथ,
रहि-रहि पद पटकथि, पीसथि रद-पंक्ति,
केश समस्त ठाढ़, खरतर प्रश्वास,
घूर्णित रक्त नयन जनि ताकए लक्ष्य,
पल-पल करथि चण्ड दुस्सह हूंकार,
पुनि भए शिथिल, विवश, धए मस्तक हाथ,
छल-छल करए नयन-जल, विकल, हताश,
पुनि झट दृढ भए सम्हरि, हृदय धए हाथ,
पाञ्चाली दिशि निश्चल नयनहि ताकि,
निरखल अपन बाहु, उच्छून विशाल,

कए नाश कुञ्चित भए विमन अशेष,
कुत्सित घृणित वस्तु जनि पाबि समक्ष,
करथि हास पुनि-पुनि विक्षिप्त समान ।
कहलन्हि पुनि भए द्रौपदीक युगपाणि,
"याज्ञसेनि, भीमक अछि व्याकुल प्राण,
अतिशय कएल बिलम्ब, कहिअ अविलम्ब
कतए होएत शठ, नीच, अधम, पापिष्ठ,
केश पकरि सत्वर घिसिअबइत आनि
तोड़ब ओकर रीढ़ कए पाद-प्रहार,
चूड़ब ओकर गत्र-गत्रक सब हाड़,
फोड़ब ओकर माथ मृदुभाण्ड समान,
जे जन ओकर सहायक होएत समक्ष
वृक्ष उखारि देव हम ठामहि पाटि
एहि अधम नृपतिक सेना संहारि,
राज्य ध्वंस कए परिजन पुरजन सङ्ग
सत्वर देब शमनपुर बाट देखाए ।
मानव दानव देव यक्ष गन्धर्व
जे आओत समक्ष से होएत नाश ।
अनुशासन अग्रजक न मानब आब,
मन अछि भेल बताह, कखन पापिष्ठ
जे कएलक तोहर एहन अपमान
पाओत दण्ड तोहर इच्छा अनुसार ।
भीमसेन भुजदण्ड आज उद्दण्ड
अचिर लेत प्रतिशोध, करत नहि सह्य
द्रौपदीक प्रति एहन अत्याचार ।
कृष्णे, भाषिअ सत्वर दण्ड-विधान
करत तकर सम्पादन एखनहि भीम ।"
भीमक अङ्कहि कृष्णा गेलि लेपटाए,
चूतक तरुसँ मालति-लता समान,
कहल, "नाथ, पापिष्ठक दण्ड-विधान
त्वरित ओकर व्यापादन, तुअ बिनु आन
मन:काम के पूरत ? किन्तु विचारि
एकर उचित सम्पादन, जाहि निमित्त

परामर्श कर्त्तव्य धनञ्जय सङ्ग
पूरए हमर मनोरथ, होअए न किन्तु
तेरह वर्षक घोर साधना भङ्ग ।
सत्वर चलिअ वृवन्नलाक आवास,
करब विचार लक्ष्य-सिद्धिक अविलम्ब ।।

ई कहि द्रुपद-सुता झट वसन सम्हारि,
धए भीमक कर गृहसँ निस्सृत भेलि
वारिवाह विच सौदामिनी समान,
अन्धकार विच सत्वर भेलि विलीन ।।

●

आठम सर्ग

अछि विराटपुर निद्रा-विजडित-काय
मध्य निशाक प्रगाढ़ ध्वान्त विच लीन ।
अर्द्धसुप्त प्रहरीगण, मूनल नेत्र,
सालस रहि रहि ठहकि पुराबए भार ।
वातायनसँ गृहदीपक - आलोक
रहि रहि अवलोकए नव-वधू-समान ।
शल्य शिवा शश बिहरए भए निश्शङ्क
करइत स्वैरगमन पुर बिच सर्वत्र
यथा प्रशासनबंधन शिथिल परेखि
कए कुकृत्य तस्कर पाटच्चर-वृन्द, ।
रजनीचर दिवसान्ध खगादि असंख्य
करइछ गमनागमन ताकि आहार,
अन्धकार जे बाधक आनक लेल
से अछि ओकर अभीष्टक साधक भेल ।
नीलगगन विच तारकनिकर असंख्य
चमकि देखाबए अपन प्रकर्ष अशेष
ध्वान्त लीन शशिहीन गगन अवलोकि ।
बिलसँ बहिर्भूत भूखल क्रव्याद
चौंदिस विजन परेखि भेल निर्भीक
राज-महानस सन्निधि सम्प्रति जाए
मांसादिक अवशेषक पाबि सुगन्धि
विवश लोभवश करइछ भोगायास ।
कुटज-कदम्बक लए परिमल मकरन्द
बहइछ मन्द-मन्द शीतल पवमान ।
पुरवासी नरनारी बालक वृद्ध

अछि सब भलहि प्रसुप्त बिसारि बिसारि
सकल व्यग्रता-चिन्ता-आधि-व्याधि,
किन्तु तीनिजन नृत्यागारहि बैसि
तजि निद्रा, तजि शय्या भए एकत्र
करथि मन्त्रणा, सुनिअ कल्पने जाए-

भीमार्जुनक मध्य कृष्णा आसीन,
जनु लवङ्गलतिका रसालयुग बीच,
मुख दिवसक शशिकला सदृश श्रीहीन,
भूषण-उडुगणविनु तन, कुन्तल स्रस्त,
पर्य्याकुल परिधान, पाणि सोत्कम्प,
अश्रु सलिल परिपूरति दृग-अरविन्द,
करथि मन्त्रणा सोदर पतियुग संग
भल निवेदि आजुक समस्त वृत्तान्त ।
कातर नयनहि अर्जुन-वदन विलोकि
कृष्णा कहल-
"धनञ्जय, करिअ विचार,
सत्त्वर निर्णय करिअ आब कर्त्तव्य,
अतिशय क्रुद्ध वृकोदर छथि भए गेल
हमहु भेलि भयकातरि छी असहाय ।"

सुनितहि भीमसेन सहसा भए ठाढ़
क्रोधमूर्ति कम्पिततन उठला भाषि-

'अर्जुन, द्रुपद-सुताक दशा अवलोकि
उचित न करब क्षणहु भरि आब विलम्ब
जाइत छी हम एखनहि कीचक-गेह
करब ओकर व्यापादन चरण प्रहारि,
जे आओत समक्ष करइत प्रतिरोध
चुर्ण-शीर्ष भए जाएत कीचक संग
रहओ अस्त्रधर अनुज दनुज, गन्धर्व ।
रहिअ अहाँ कृष्णाकाँ एतहि अगोरि
भए सतर्क रक्षाक रचैत उपाय ।"

भीम-वचन सुनि भए अति चिन्ताग्रस्त,
रौद्र-रूप अवलोकन कए भए व्यग्र,
कर धए अर्जुन लेल निकट बैसाए,
कए अनुनय भाषल,
''तुअ पौरुष, शौर्य्य,
तुअ अवरजसँ अधिक न जानए आन,
कहि सकइत किछु वक हिडिम्ब, किर्मीर
यदि नहि जाइत यमपुर पाबि प्रहार,
किन्तु आर्य्य, सम्प्रति कर्त्तव्य विचार,
कए क्रोधक परिहार, चित्त कए शान्त ।
थिक वीरक अनन्य साधन उत्साह
होइछ लोक क्रोधसँ कुण्ठित-बुद्धि ।
क्रोध-तरुक विषफल थिक पश्चात्ताप
जाहि जन्य जीवन भए जाए जघन्य ।
पड़ि विवेक-क्षीरहि क्रोधाम्ल करैछ
विकृत-रूप-गुण सत्वर ताहि विनष्ट
क्रोध विवेक-बन्ध कए सहसा भग्न,
भए भए उन्मर्य्याद करए उत्पात,
यथा नदी बढ़ि, कए तटबन्ध-विभङ्ग
पार्श्वद्वयक प्रान्त दहबैत करैछ ।
क्रुद्ध-मनुज भए जाइछ दनुज समान ।
भए जाइछ विवेक चिन्तामणि नष्ट
क्रोध-हुताशन कुण्डहि पाबि निपात ।
क्रोध-वह्निमे पड़ि विवेक-नवनीत
द्रवीभूत भए धधकि भस्म भए जाए ।
क्रोधावेश बिगाड़ए लोकक दृष्टि,
विकृतदृष्टि भए जाइछ लक्ष्य-भ्रष्ट
लक्ष्य-भ्रष्टक हो पदपद अपकर्ष ।
थिक उपाय कर्तव्य अपाय विचारि,
तेरह वर्षक घोर साधना-काल
लेल खेपि कए सम्प्रति अन्त-प्राय,
अत्यावश्यक सम्प्रति रहब सतर्क
भए नहि जाए समस्त तपस्या व्यर्थ ।

विपद्दहि थिक मानव-हेमक जाँच,
से उबरए जे नहि होइछ विकृताभ ।
छी यदि चलल मारि आनब मृगराज,
मारि श्रृगाल करब अर्जित यश कोन ?
यथा पराक्रम तथा सहनशीलत्त्व
थीक वीरता-व्यंजक स्थिति-अनुसार ।''
अर्जुन-नीति विमिश्रित सुवचन सूनि,
क्रमक्रम भए प्रकृतिस्थ विचारि-विचारि,
क्षण भरि भीमसेन रहि बैसल मौन,
निर्वापित ज्वालामुखीक अनुरूप,
पुनि गम्भीर-स्वर भाषल भए खिन्न–
'अर्जुन-तुल्य धनुर्द्धर युद्ध-प्रवीण,
महिमण्डल बिच भीम न जानथि आन,
के अछि एहन युद्ध विच भए प्रतिपक्ष
अविचल रहत सहन कए शरसंघात ?
किन्तु ताहिसँ अछि लव मात्र न न्यून
तुअ विचार-प्रागल्भ्य, बुद्धि-वैशद्य ।
कहल क्रोध परिहरए, विफल ई क्रोध,
अकर्मण्य भीमक थिक चित्त-विकार
तृणक पुञ्जमे लागल अनल समान,
क्षण भरि धधकि स्वयं जरि जाए मिझाए ।
सभा-सद्म विच सहि कौरव-उपहास,
दुःशासन-कृत कृष्णा-दुर्गति देखि,
जाहि सुमरि एखनहु होइछ रोमाञ्च,
अविचल सहल सकल भए बन्ध्य-क्रोध,
वन-वन विचरण करइत भए गृहहीन,
सहइत उपर्य्युपरि नित दुस्सह क्लेश
बारह वर्ष बिताए निराश्रय भेल
करइत ई अज्ञातवास व्रतरूप
अन्तप्राय जखन सम्प्रति कए लेल
तखनुक कीचककृत ई दुर्व्यापार
थिक जनु विपद्वृश्चिकक पुच्छक दंश ।
कएल न प्रारम्भहि विच उचित उपाय,

शत्रु-सर्प-ऋण-अनल-व्याधि शमनीय,
जा नहि धारण करए भयङ्कर रूप ।
बल-दर्पित जघन्य नहि सामक साध्य,
भीम न सीखल बैसल करए विचार,
से जीतए जे करइछ प्रथम प्रहार ।
पाबि पराभव जे बैसथि कर जोड़ि,
करइत अपन सहन-शक्ति व्याहार,
पौरुष तनिक सिरजि बहुविध सन्ताप
होइछ व्यर्थ यथा यौवन विधवाक ।
जे भए अवमानित बैसथि भए शान्त,
थिक तनिकासँ वर बरु बाटक धूलि,
पादाहत भए जे माथहि चढ़ि जाए ।
सह्य करब हम द्रौपदीक अपमान
गनइत शेष कुदिन प्रतिशोधक हेतु
धए संयोगि क्रोध-विष, सर्प समान,
जाधरि दिनकर-किरण रहैछ अनुष्ण,
किन्तु चित्त होइछ नितान्त उद्विग्न
कोनपरि कृष्णा खेपति अवधिक शेष
निरवलम्ब एकसरि निरीह असहाय
एहि वनोपम पुरविच मृगी समान
क्षुधित-व्याघ्र-सम खल-कीचकक अछैत।
घटित-विपत्ति न तादृश चिन्तयितव्य
यथा विपत्यावृत्तिनिरासोपाय ।।''

ता सहसा चरणायुध कर्कशनाद
कएल कान पड़ि सभक ध्यान आकृष्ट,
भीम महाबल सत्वर उठि भए ठाढ़
भाषल—

''अर्जुन, न्यस्त तोहि कए भार
चललहुँ हम, भए गेल रजनि-अवसान,
सम्प्रति उचित न रहब एतए एकत्र,
रचिअ रक्षणोपाय द्रुपद-दुहिताक
स्थिर भए भल विचारकए हुनकहु संग,
आएब दिवसमध्य हम कार्य बनाए,

बूझि विचार मतामत देब जनाए ।''
ई कहि भीममहाबल गजक समान
फटइत अन्धकार विच कएल प्रयाण ।
ता' देवायतनक कल घण्टानाद
भेल कर्णगोचर, करइत उद्घोष
बीतल रजनि, त्याज्य थिक शय्या आब ।
श्रुति सुखकर प्राभातिक गान तरङ्ग ।
भेल प्रवाहित मुरज-निनादक संग ।
रात्रिञ्चर दिवान्ध खग-पशु-समुदाय
करइत यातायात, भेल निद्रालु,
वर्द्धमान-प्राची-प्रकाशसँ भीत
लागल करए आश्रयण गुप्त-स्थान ।
राज-भोजनागारक सन्निधि बैसि
श्वान, क्षुधातुर भए, अवलोकए बाट,
कखन करत परिचारकगण निक्षेप
गत-रात्रिक भोजनक पर्य्युषित शेष ।
कुमुद-कमल अधमुनल सरोवर बीच
लागए अलसाएल लोचनक समान ।
अलि-कुल निकसि कञ्जसँ भेल पिसङ्ग
कए कल-गुंजन भ्रमए भेल मदमत्त ।
प्रति-निश आबि अतिस्पृह वन्य तृणाद,
प्रमदोद्यान मध्य करइत उत्पात,
अनवधान प्रच्छन्न-जालविच बाझि,
प्रत्यूषक तरलित तमविच अवलोकि
सास्त्र-प्रमद-वन-रक्षक शमन समान
यथा-साध्य करइत मुक्त्यर्थ प्रयास,
होइछ कुटिल जालविच दृढ़तर-वद्ध ।
निद्रा तजिकए प्रातः-स्मरण सभक्ति
नित्य-कर्म लगलाह करए द्विजवृन्द ।
तरु-शाखापर विहग करए कलनाद ।
चक्रवाक भए भए उद्ग्रीव अकानि
विधुर कलत्रक मदिर मसृण आह्वान
पक्षास्फालन करइत चलल सवेग ।



नवम सर्ग

चन्द्र-किरण-चुम्बित भूमण्डल आज,
साओन-रजनि शोभ नभमण्डल मध्य,
मेघराशि नाना रूपक लघु दीर्घ,
लागए कतहु शैल-श्रेणीक समान
ठाम-ठाम उत्तुङ्ग शृङ्ग संयुक्त ।
कतहु लाग जनु गगन-सरोवर मध्य
क्रीड़ा करए मत्त मात्तङ्गक यूथ ।
मेघ-खण्ड अनुपल परिवर्त्तनशील
किछु खन भए सञ्चित होअए पुनि व्याप्त
नभ-मण्डल भरि झाँपि सतारक चन्द्र,
राका सत्वर गहए अमाक स्वरूप ।
केतकि-कुसुम प्रफुल्ल शोभ जनु इन्दु
खण्ड-खण्ड भए, खसल, गेल छिड़िआए।
रहि-रहि घन गर्जन कर जे सुनि त्रस्त
विमुख कामिनी पिअकाँ कए आबद्ध
बाहुपाश दए अपनहि तेजए मान ।
उमड़ल वारिवाह, लखि मत्त-मयूर
करए नृत्य करइत कल-मादक गान,
जे सुनि प्रोषितपतिका आतुर-प्राण
नयनहि जल बरिसाबए मेघक सङ्ग ।
कतहु विरल-वसना पिअ-उर लेपटाए
शीतल पवनक जलमय पाबि झकोर,
पिअ-वसनहि झापए कोनहु विधि देह ।

अन्धकार बिच पड़लि विवसना देखि
दामिनि-द्युति बिच सहसा उपगत कन्त,
विवश लाजवश मूनि नयन अभिराम
नीप-कुसुम-सम हो रोमञ्चित-गात ।
कतहु भेक कर जी भरि कर्कश-गान
भए तन्मय आनन्द-विभोर, न जानि
अछि निकटहि दबकल अति दारुण व्याल
करत ग्रास जिवितहि झट अवसर पाबि ।
झखरल आज रसालक तरुतर आबि
भए उदास बौआए क्षुधित जम्बूक
पाकल फलक पाबि रुचिकर आमोद,
चपल वेगसँ जाए ताहि दिशि दौड़ि,
उच्च डारि पर देखए पनस विशाल,
बैसए ततए लुब्ध सस्पृह मुंह बाबि,
आस लगाए खसत पाकल फल किन्तु
भए निष्फल भिजइत क्षुधार्त्त भरि राति
रहि-रहि भए आतुर करइछ उत्क्रोश ।

एहन मेघावृत रजनी बिच आज
अछि जाइत एकसर कीचक मदमत्त
मत्स्याधिपक जाहि दिशि नृत्यागार ।
आबथि ततए प्रभातहि सखिगण सङ्ग
राजकुमारी सीखए गायन-नृत्य,
सन्ध्याकाल जाथि घुरि राजनिकेत
हो निर्जन एकान्त नर्त्तनागार ।
ततए कन्यका-गणक प्रसाधन हेतु
छल सञ्चित अनुपम उपकरण प्रभूत
छल सज्जित पर्य्यङ्क दृढ़ाङ्ग महार्ध
सुकुमारीगण श्रम-अपनोदन-जन्य ।
दिन भरि वीणा-मुरज-निनादक सङ्ग
श्रुति-अमृतोपम हो शिञ्जित मंजीर ।

रहि-रहि विविध मनोहर रागालाप
नाना वादित्रक कल गुञ्जन सङ्ग
श्रोतागणक चित्त कर मुग्ध अशेष
मूर्त्तिमान गान्धर्व परिच्छद सङ्ग
जनि रहि ततए दिवस भरि करथि प्रयाण
होइतहि दिन अवसान दिवाकर सङ्ग,
निशि भरि तमसाच्छन्न नर्त्तनागार
खानि मध्य मणितुल्य रहए अनपेक्ष ।

लघु पद ताही दिशि जाइत तम बीच
यथा क्षुधातुर वृक अरण्य बिच जाए ।
कीचक भावए मन-मन 'जीवन धन्य,
आज हमर चिरकांक्षित कए उपलब्ध !
जाहि जन्य भए विकल विवश उद्भ्रान्त
विफल-प्रयास छलहुँ कातर निरुपाय
तिल-तिल जरइत काम-हुताशन मध्य,
से सैरन्ध्री कएल प्रणय स्वीकार ।
अन्त:पुर बिच आज प्रभातहि जाए
कहल ताहि एकान्तहि निकट बजाए
देखल सुमुखि कीचकक प्रबल प्रताप
मत्स्यराज्य बिच कीचक कर सँ त्राण
नहि सम्भव की करत नृपति असहाय
नाम मात्र बहइत नृपतित्वक भार ।
अछि केन्द्रित बल सकल, सकल अधिकार
एहि प्रबल भुज मध्य, प्रणय स्वीकार
करिए नितम्बिनि, देल विधाता तोहि
रूप अशेष, अपरिमित तन लावण्य,
सार्थक करिअ एहि सुन्दरि सोत्साह ।
कए वितर्क स्वेच्छासँ नहि कए काज
भए पुनि विवश करब से थिक मूढत्व ।
तुअ तन-सुषमा गुण-वयसक उपयुक्त

के हमरा सन आन होएत उपलब्ध
जे तोहि राखत हृदयक हार बनाए
काम-कलाक सिखाओत पाठ अशेष
सकल कामना पूरत कए उपहार
मत्स्य-राज्य-प्रभुता-ऐश्वर्य्य समस्त ।
कए परिरम्भन-दान, सुमुखि, तजि लाज
सफल करिअ तारुण्य पुराबिअ आस ।''
सुनि-सुनि काम-विवश सैरन्ध्री भेलि,
गहल कपोल पक्व नारङ्गक रङ्ग,
पूरल तन प्रस्वेद, भेल रोमाञ्च,
लाज-विवश कए अवनत वदन-सरोज
रुद्ध-कण्ठ सँ बाजलि कम्पित मन्द,
''सेनापति, हम अबला अति असहाय
प्रकट-स्वैरिणी भए नहि पाएब त्राण ।
रहथि निरीक्षण-तत्पर पति अति क्रूर
सन्देहहु करताह हरण मम प्राण !
राखिअ गुप्त अभीप्सित, गुप्त नितान्त,
सहचर, स्वजन, बन्धु सभ सँ अति गुप्त
होअए नहि रञ्चो ककरहु ई भान ।
सुपुरुष साधथि काज उपाय विचारि ।
निशि भरि नृत्यागार रहए एकान्त
होअए न कतहु ताहि दिशि जन-सञ्चार,
बितइत रजनि पहर भरि निभृतहि आज
करिअ प्रतीक्षा ततए जाए निश्शङ्क
ततए मिलन होएत पूरत अभिलाष ।''
ई कहि कए भ्रू-भङ्ग, कटाक्षहि बेधि
सत्वर अन्तःपुर कक्षहि चलि गेलि
सहसा विवर-मध्य भुजगीक समान
डशि सविष कए हमर समस्त शरीर ।
छलहुँ ततहि किछु काल अचम्भित ठाढ़
भावि अङ्गना-चरित, दुरुह, अपार ।

ध्रुव सैरन्ध्री पहिनहि कामासक्त
भेलि निरखि मोहि, कए आयास लोभाए,
कृत्रिम विरस देखाए, कएल अभिनीत
अपन निरीह विवशता, दृढ़ संकल्प
घोर अरुचि ऐहिक सुख भोग-निमित्त,
कए ज्ञापित निज पातिव्रत्य अटूट
कए सन्देहक पथ अवरुद्ध नितान्त
आज कएल अछि प्रकट अकृत्रिम रूप ।
कए अभिनय स्वाभाविक विविध प्रकार
दए अति निभृतहि चतुर मिलन-संकेत
अछि सम्प्रति चलि गेलि, करति अभिसार
किंवा छल स्वाभाविक ओकर चरित्र ।
कए अतिघोर निरोध, विवश अछि भेलि
अतुलित हमर प्रतापजन्य निरुपाय,
कीचक प्रखर नखरसँ त्राण विचारि
नहि सम्भव, भए त्रस्त कएल स्वीकार
प्रणय-याचना, लोक-लाज भय-भीत ।
करब वितर्क व्यर्थ सम्प्रति कए प्राप्त
सैरन्ध्री सन रमणि प्रेयसी-रूप ।
किन्तु विलम्ब आब होइछ नहि सह्य,
होएत कखन समागम, कखन अनङ्ग
करत विजय-उपहार-स्वरूप प्रदान
सुवदनि सुदति सुनयना युवती-रत्न
पीनस्तनी, नितम्बिनि, तन्वी मोहि ।
कखन पान कए करब पिपासा तृप्त
विम्बोष्ठी रामाक अधर-पीयूष ।''
भावि एहि विधि, आबि हुलसि आवास
लगलहुँ करए प्रतीक्षा भेल अधीर
कखन बितत दिन, बितत पहर भरि राति,
किन्तु भेल छन पहर, पहर भेल मास ।
कोनहु परि आतुर भए काटल काल

करइत तनक प्रसाधन, सज्जित गात,
सङ्केतस्थल अएलहुँ अछि एहिठाम
गहन तिमिर बिच तस्कर-रूप नुकाए।"

कीचक एहि प्रकार आबि भेल ठाढ
अन्धकार बिच नृत्यागारक द्वार
हेरइत चौदिस चञ्चल-चित्त, सशङ्क

दशम सर्ग

ताबत चमकए लागल विद्युद्दाम,
लागल झहरए वृष्टि मूसलाधार,
दमसि दमसि घन कर गर्जन गम्भीर,
कड़कए क्षण क्षण भरि पर तीव्र क्षणांशु,
वज्रपात सूनि सूतल उठय चेहाए,
जागल मूनए आँखि-कान संत्रस्त ।
के थिक शक्रक एहन दुर्मद शत्रु
जकर दर्प करबा लए चूर्ण-विचूर्ण
सज्जित मेघवाहिनी कएल प्रयाण
करइत भीषण अस्त्र-शस्त्र प्रक्षेप ?
ककरा पर संक्रन्दन भए संक्रुद्ध
करथि एना हनहन दम्भोलि प्रहार ?
कीचक नृत्यागारक कक्षहि आबि
भए उद्विग्न मनहिमन कएल बिचार,
'नहि आइलि सैरन्ध्री, कोन परि आब
आबि सकति भेलहु पर वृष्टि-विराम,
होएत बाट अगम्य विकट निशि मध्य
अथवा पहिनहि चलि अटकलि पथ बीच,
कतहु होइति भिजइत, एकसरि सुकुमारि ।
की ओ पहिनहि आइलि नृत्यगार,
डूबलि तिमिरहि, भीत, अनङ्ग सहाय
तकइते बाट अधीर कतहु अछि ठाढि ?
करइत तर्क-वितर्क अनेक प्रकार
हेरल कीचक चौदिश विफल-प्रयास ।
यथा अन्ध ताकए कए बहु अयास

धूलि-पुञ्ज बिच भ्रष्ट रत्न बहुमूल्य
पहिनहि ततए द्रौपदी-बल्लभ भीम
आबि रहथि बैसल पर्य्यङ्कारूढ,
यथा वनहि रजनी बीच कलबल आबि
आखेटक बैसए चढ़ि कृत्रिम मञ्च,
बान्हि ततए लघु महिष प्रतारण-भक्ष्य
जकर सुलभ मांसार्थ बिलुब्ध बुभुक्षु
व्याघ्रक करए प्रतीक्षा शर सन्धानि ।

विद्युद्द्योतहि ताहि देखि अस्पष्ट
बुझइत ताहि द्रौपदी, कीचक भेल
उपगत कहइत–
"सुन्दरि, एहि प्रकार
की छह बैसलि कए हमरा उद्विग्न,
आबि एतए कत काल छलहुँ उद्भ्रान्त ।
नहि बूझल रतिपति पहिनहि तोहि आनि
धएल एतए कीचक-अनन्य-उपभोग्य
सज्जित कए उद्दीपन-समय विचित्र ।
सुन्दरि सत्वर कए आश्लेष प्रदान
यौवन करिअ कृतार्थ, तजिअ सङ्कोच,
भोगिअ एहि तनक सुखमय संश्लेष,
जाहि जन्य लालायित युवती-वृन्द
रहइत अछि लुबुधलि कामातुर भेलि ।"
भीम महाबल हँसि-हँसि कहलन्हि ताहि–
"सूत-पुत्र, सरिपहुँ सुन्दर तुअ रूप
जाहि विलोकि होअए प्रमदा आसक्त ।
के तोहरा सन सुपुरुष अतुल प्रताप,
तेँ अएलाह रजनि बिच तस्कर-तुल्य ।
पएबह सम्प्रति तेहन तन-संस्पर्श
जेहन नहि तोहरा भेटलहु आजन्म,
पाबि क्षुद्र जम्बूकक कुल बिच जन्म
चाहह सिंहक केशर लेब उपारि ।
अएला सैरन्ध्रीक सगागम-काम,
देबहु तोहरा यमसँ भेट कराए ।

करइत अत्याचार भेल कामान्ध
सैरन्ध्रीसँ कएल घृणित व्यवहार,
तकर करब हम सत्वर दण्ड-विधान ।''
ई कहि लपकि धएल कसि कीचक-केश,
कीचक भेल परम विस्मित संक्षुब्ध,
मणि उठबैत पड़ल उरगक फण हाथ,
पाबि मनोरथ-भङ्ग भेल अति खिन्न ।
सहसा पाबि जिघांसु विपक्ष समक्ष,
सत्वर सम्हरि भेल क्रोधान्ध नितान्त,
झटकि केश भीमक करसँ कए मुक्त
गुम्हरि, दमसि, तारस्वरसँ ललकारि,
कहल– ''दुष्ट, वञ्चक, सैरन्ध्री-जार,
कीचक-करसँ होएत न तोहर त्राण ।
पटकि तोहि बान्हब कसि खाम्ह लगाए,
सैरन्ध्रीकेँ सत्वर तोहर समक्ष
कए विवस्त्र, धए झोंट आनि घिसआएँ,
कए दुर्गति, लेबहु हम तोहर प्राण ।

भीम कहल कए गर्जन सिंह-समान–
''अधमाधम, तोहर बर-बर अभिलाष,
कर ई ग्रहण तकर समुचित उपहार''
ई कहि भीम कएल कसि मुष्टि-प्रहार,
कीचक अविचल सहल भेल संक्रुद्ध
प्रत्याघातक करइत घोर प्रयत्न ।
कीचक-भीम पकड़ि अन्योन्यक बाहु
लगला लड़ए मत्त-मातङ्ग समान ।
करइत गर्जन जूझल युगल सुबाहु
किष्किन्धेश बालि-सुग्रीव समान
कर-चरणहि नख-दन्तहि कए आघात ।
हन-हन मुष्टिक चट-चट पड़ए चपेट
वेणुस्फोट सदृश करइत रव घोर ।
लड़इत दृप्त सिंह-शादर्दूल समान
कएल परस्पर शोणित-पूरित गात्र ।
करइत युद्ध प्रवृद्ध-वृषभ अनुरूप

करथि विपक्ष-पातनक यत्न अशेष ।
भीमक चण्ड-पराक्रमसँ अभिभूत
कीचक सहसा खसल नृत्य-गृह-मध्य,

यथा प्रवात-निपातित-वृक्ष विशाल ।
चट उठि सम्हरि क्रुद्ध भए कएल प्रहार
भीमक मस्तक पर विस्मापक-मुष्टि,
भेल मुहूर्त-जन्य पाण्डव अति व्यग्र,
कीचक घोर पराक्रमसँ आक्रान्त
रोपल जानु मही पर, पुनि संक्रुद्ध
प्रखर दण्डधर-दारुण-शमन समान,
उरगोपम करइत दुःश्रव फूत्कार,
गरजि-तरजि, कए कम्पित नृत्यागार,
कीचक वक्षस्थल पर भल अजमाए
वज्र-मुष्टि कसि कएल तीव्र-आघात
कीचक भेल विकल जड़ शिथिल-प्रयास,
क्षण भरि जन्य भेल सहसा हतचेत,
सम्हरि करए लागल पुनि प्रत्याघात
अति प्रचण्ड, अति दारुण, कुलिश समान
कुन्तीपुत्र सकल अविचल सहि लेल,
यथा शैल मेघक जल-करका-वृष्टि ।
कीचक - भीमक भेल द्वन्द्व अति घोर
वासव-वृत्र, सुन्द-उपसुन्द समान,
आखण्डल-वैरोचन, तारक-स्कन्द,
पद्मनाभ-कैटभ हर-अन्धक तुल्य ।
करइत एहि प्रकार पराक्रम घोर
उन्मद कीचक प्रहरोपरि अति उग्र
क्रम-क्रम क्लमसँ होअए लागल खिन्न,
लागल शिथिलित होअए प्रत्याघात ।
अस्थिर-पद, कम्पित उरुसँ अनुमानि
ताहि हीनबल, भीम गरजि अति घोर
देल पछाड़ि, खसल मुखभर गृहमध्य
सहसा वक हिडिम्ब किर्मीर समान ।
क्रोधाविष्ट छाड़ि खरतर प्रश्वास

त्वरित भीम विक्रान्त लपकि धए केश
लगला घिसिआबए कए चरण-प्रहार ।
पराभूत कीचक कएलक चीत्कार
आर्त्तनाद करइत भए शिथिल-शरीर ।
मेरु-दण्ड पर निज गरिष्ठ उरु चापि
ललकि भीम धिक्कारि कहल,

पापिष्ठ,

शठ, पामर, मदान्ध, कुत्सित, खल, नीच,
परदारा-लम्पट, अएलेँ मन बाँटि
करब एतए सैरन्ध्री-सुख-सम्भोग,
भेटलहु आबि कराल सपत्न कृतान्त ।
सैरन्ध्री-कण्टक, तोहि झट संहारि
करब शान्त सम्प्रति प्रज्वलित अमर्ष ।''
ई कहि कीचक-मेरुदण्ड कए भङ्ग
पदाघातसँ विघटित कए सब अस्थि,
वाम चरण धए मस्तक कएल विचूर्ण,
कीचक भए निस्पन्द भेल निष्प्राण ।

कए हुँकार भयंकर वारंवार
भीमसेन प्रलयङ्कर रुद्र स्वरूप
कीचक-शव समक्ष कए हेरथि ठाढ़,
यथा सिंह व्यापादित कए गज मत्त,
प्रखर-नखरसँ कए करि-कुम्भ विदीर्ण ।

ता' प्रदीप लए द्रुपद-सुता सुकुमारि
आइलि सँकुचलि, भए समक्ष भेलि ठाढ़ि,
ताहि बिलोकि कहल स्मित-मुख भए भीम-
''चण्डि, करिअ चुम्बन ई कर रक्ताक्त,
तुअ अमर्ष-हुतबह बिच कएल प्रदान
प्रथमाहुति ई आज एहि संहारि,
राखिअ ज्वलित हुताश ताहि दिन जन्य
पूर्णाहुति जहिआ दए पाएब शान्ति
चिकुर चिराकुल कए भल वेणीवद्ध
याँचब भए निर्व्यग्र प्रणय-उपहार । ●